TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180160
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1 K92E   Accession No. P. G. H153

Author कृष्णचन्द्र.

Title एक ख़त एक ख़ुशबू. 1956.

This book should be returned on or before the date last marke

एक खत एक खुशबू

कृष्ण चन्द्र

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड संस
देहली

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड संस
देहली

प्रथम संस्करण १९५६
मूल्य
तीन रुपया चार आना

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

विषय सूची

एक खत एक खुशबू	१
काली सड़क सफेद सड़क	२१
फिर वही चाह	३७
दो प्रेम	५३
आलूचे	७१
नई शलवार	८५
ऐयाशी	१०३
उजियारे के घाव	११९
हड़ताल तोड़	१३५
गंजा	१४९
साया	१६७
पवित्र	१८५

एक खत, एक खुशबू

एक खत, एक खुशबू

प्यारी मोना,

गाड़ी करजत के स्टेशन से निकल चुकी है और पूना की ओर जा रही है। तुम्हारा खत मेरे हाथ में है। नीले रंग का लिफाफा, नीले रंग का कागज, निर्मम नीले रंग की लिखावट, जिसमें तुमने लिखा है, 'मैं रोजारियो की हो चुकी हूँ। तुम मुझे भूल जाओ या मर जाओ।'.....मैं तुम्हें भूल तो नहीं सकता इसलिए मर जाऊँगा। जिस समय तुम्हें मेरा खत मिलेगा, मेरी मौत हो चुकी होगी।

मैं जानता हूँ, इस घटना के बाद भी तुम्हारे जीवन में कोई कमी नहीं आयगी। तुम्हारे हरे पर्दोंवाले ड्राइंग रूम में कोई सोफ़ा इधर से उधर नहीं होगा। किताबों की कोई आलमारी इधर से उधर सरकायी नहीं जायगी। संगीत के रिकार्डों में से कोई रिकार्ड तोड़ा नहीं जायगा। वह मूढ़ा भी योंही रहेगा, जिस पर बैठकर मैं तुम्हें नाखूनों पर सुर्खी लगाते देखा करता था। मेरे बाद शायद कोई दूसरा आयगा और इसी तरह इस दृश्य को देखा करेगा। मूढ़ा वही रहेगा, सिर्फ रोजारियो का प्रतिद्वन्दी बदल जायगा। मैं जानता हूँ, मेरे मरने से तुम्हारे होठों पर एक आह, तुम्हारे हृदय में एक हूक,

तुम्हारी आँख में एक आँसू न आएगा। मुझे मालूम है रोजारियो यह खबर सुनकर एक व्यंगपूर्ण मुस्कराहट से तुम्हारी ओर देखेगा, और तुम्हारी कमर में हाथ डालकर तुम्हें खाने की मेज की ओर ले जायगा। और रोज़ारियो और तुम धीरे-धीरे छुरी और काँटा चलाते हुए खाने के कोर्सों की ओर आकृष्ट हो जाओगे—यह सोचे बिना कि आज किसी के जीवन का अन्तिम कोर्स समाप्त हो गया। आज किसी के लिए भूख हमेशा के लिए खतम हो गई, क्योंकि जब आदमी मर जाता है, तो उसके लिए सारी दुनिया मर जाती है। इसलिए घास की खुशबू उसके लिए नहीं होती ; और फूल की खुशबू उसके लिए नहीं होती ; और शहर की खुशबू उसके लिए नहीं होती। कोई खुशबू उसके लिए नहीं होती; और कोई उमंग उसके लिए नहीं होती; और कोई टीस उसके लिए नहीं होती; और कोई आकांक्षा उसके लिए नहीं होती; और किसी के प्रेम की पीड़ा उसके लिए नहीं होती। अब वह वायलिन नहीं सुन सकता; और नदी में पाँव डालके पानी से खेल नहीं सकता; और गली के नुक्कड़ पर खड़े होकर सिगरेट सुलगाते हुए, किसी गुज़रती हुई सुन्दर स्त्री की ओर उस अबोध आश्चर्य से नहीं देख सकता, जिससे व्योम में किसी मन्द गति से उड़नेवाले बादल के सफेद टुकड़े को देखा जाता है। मौत के बाद जिन्दगी की सारी खुशबुएँ उसके लिए मर जाती हैं। इसीलिए मौत का गम होता है। और यह गम उतना ही अनिवार्य है, जितनी कि मौत।

तुम कहोगी, अगर तुम मुझे भूल नहीं सकते थे, तो मरने

के लिए बम्बई से इतनी दूर जाने की क्या जरूरत थी ? यह जरूरत इसलिए पड़ी कि बम्बई में तुम हो; और रोजारियो है; और तुम्हारा घर है; और तुम्हारे घर का वह बरामदा है, जिसके गोलाकार खम्भे से लिपटी हुई इश्कपेचाँ की बेल से खेलते हुए हम दोनों घण्टों एक दूसरे से बातें किया करते थे। बम्बई में वे तट मौजूद हैं, जिन्होंने हमारे प्रेम के पगों की आहट सुनी है; वे नारियल के सरसराते हुए वृक्ष मौजूद हैं, जिन्होंने हमारे प्रेम की कानाफूसी सुनी है। बम्बई में मुझसे मरा न जायगा, इसलिए पूना जा रहा हूँ। वहाँ बैठकर आज मैं ठाठ से रेस खेलूँगा; अपने बैंक के आखिरी रुपए हार जाऊँगा। फिर होटल लौटकर अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके अपने जीवन के अन्तिम क्षण से भी खेलूँगा, और उसे भी हार जाऊँगा। जब जिन्दगी में तुम्हारा प्रेम न जीत सका, तो फिर किसी चीज के जीतने में क्या मजा आएगा।

इस समय रात अपनी अन्तिम घड़ी काट रही है और प्रातःकाल का कुहर और धुन्ध चारों ओर छाया हुआ है। क्षितिज पर कहीं भी सूरज का सुनेहरा रंग नहीं है। हर ओर एक विषादमय कालिमा, एक उतरी हुई सफेदी में घुलकर, धुन्धलकों को और गहरा कर रही है। हवा में एक शीतलता-सी आ चुकी है, क्योंकि गाड़ी अब पश्चिमी घाट की बुलन्दियों की ओर दौड़ी जा रही है।

मानसून के परदेसी बादल हरी घाटियों पर झुके हुए हैं— अपने वक्षा में प्रेम के अनगिनत आँसू छिपाए हुए। यह बादल भी मेरी तरह उदास दिखाई देते हैं। ये राही बादल जो

बहुत दूर सागरों से, अनजानी तूफानी लहरों पर से, होकर यहाँ आते हैं, और पश्चिमी घाट की चोटियों को अपने आहत प्रेम के गीत सुनाकर चले जाते हैं और अभिमानी चोटियाँ तुम्हारी तरह अपने घमण्ड में मग्न, उसी तरह खड़ी रहती हैं और एक क्षण के लिए अपनी बाहें नहीं फैलातीं, उन बादलों को रोकने के लिए, जिनकी आत्मा का सारा रस उन्होंने चूस लिया है।

गाड़ी भागी जा रही है। मेरे सामने की खिड़की में एक गोआनी सुन्दरी अपने पति के कन्धे पर गाल रखे बड़े इत्मीनान से सो रही है। कैसी अजीब,अनोखी, गहरी, न समझ में आनेवाली मुस्कराहट उसके चेहरे पर है। वह कैसा स्वपन देख रही है? किसे देखकर मुस्करा रही है? वे कैसे फूल हैं जो उसके मानस में चमक रहे हैं? वे कौन-से जुगनू हैं, जो उसके वक्ष में जगमग-जगमग कर रहे हैं? ए सोई हुई सुन्दरी! उन जुगनुओं की थोड़ी-सी चमक मुझे भी देदे; उन स्वपनों का एक कोर मेरे लिए भी अलग कर दे; उन फलों की तनिक-सी महक मुझे भी प्रदान कर दे। मैं तो मरना नहीं चाहता, मगर क्या करूँ? मेरे कन्धे को किसी का गाल नसीब नहीं; मेरे बालों से किसी की जुल्फ नहीं, मेरे शरीर से जिस शरीर का स्पर्श होता था, वह इस समय दूसरे के बाहुपाश में है। फिर मैं कैसे जिन्दा रहूँ? ए सोई हुई गोआनी सुन्दरी! बस मुझे इतना बता दे।'

लेकिन सोयी हुई गोआनी सुन्दरी स्वप्न में और मुस्करा देती है और मैं नज़र फेरकर बाहर देखने लगता हूँ। 'यह

बाहर से क्या तुम्हारा घर गुज़र गया ?' सचमुच बिल्कुल तुम्हारे घर की तरह था। वही सीढ़ियाँ, वही बरामदा, वही अन्दर दरवाजे पर सरसराते हुए भारी पर्दे, वही खम्भों से लिपटी हुई इश्कपेचाँ और बोगन देश की बेलें।

याद है, मोना, जब पहली बार तुम्हारे घर में आया था ? जब मेरी निगाहों ने तुम्हारी निगाहों का और तुम्हारी निगाहों ने मेरी निगाहों का सन्देश समझ लिया था—जिसे सिर्फ निगाहें ही समझना जानती हैं। उस बार जब तुम मुझे बिदा करने के लिए बाहर बरामदे में आयी थीं, और कुछ समय तक मेरे साथ खड़ी रही थीं, उस समय रोजारियो हमारे बीच में न था। वह एक तरफ़ शर्माया, लजाया और पराजित-सा खड़ा था। और मैं गाड़ी में बैठ गया था, और तुम देर तक बिदाई के समय हाथ हिलाती रही थीं। उस पहली बार और उसके बाद सैकड़ों बार, वह बरामदा मेरी जिन्दगी में आया, जब तुमने बेहद खुशी और असीम उल्लास से हाथ हिला-हिलाकर मुझे अपने घर से बिदा किया और रोजारियो खम्भे से लगा, सिर झुकाए सब देखता रहा।

और फिर वह शाम, जिसके बाद तुम्हारी और मेरी जिन्दगी में कोई शाम नहीं आयगी। जब रोज़ारियो ही सब कुछ था और मैं कुछ न था। और मैंने तुमसे तीन बार पूछा—'मोना, मैं जाऊँ, मैं जाऊँ, मैं जाऊँ ?' और तुमने एक बार भी कुछ न कहा। तुम्हारी पलकें झुकी रहीं। तुम्हारे हाथ बँधे पड़े रहे और रोजारियो की मुस्कराहट और कमरे की हर दीवार, मुझ पर हँसती रही। और मैं चुपचाप उस मूढ़े से

उठ खड़ा हुआ। और कोई उस कमरे से नहीं निकला; और किसी ने मुझे बिदा नहीं किया; और मैं धीरे-से पर्दा उठाके तुम्हारे कमरे से बाहर आगया। बरामदा खाली था। पर्दे दबीज थे, फूल नत-मस्तक थे। और मैंने हँसकर अपने दिल से कहा—'आज किसी ने किसी के दिल में मुहब्बत के फूल खिलाए हैं और हमारे भाग्य में खाली बरामदे आए हैं। चलो, खाली आसमानों को ताकनेवाले राही, यहाँ से भी चलो।'

मैंने एक क्षण मुड़कर उस खाली बरामदे की तरफ़ देखा। उस दरवाजे की तरफ़, जिसके पर्दे के उस तरफ तुम थीं और रोजारियो, और बीच में यह खाली बरामदा था। 'आज के बाद मैं तो मर जाऊँगा लेकिन तुम जब-जब इस बरामदे में आओगी, इश्कपेचाँ के फूलों में मेरी महक पाओगी।'

परन्तु यह मेरा भ्रम है। तुम्हारे जीवन में मेरी याद तक नहीं महकेगी, क्योंकि मेरी याद एक ऐसा फूल है, जिसमें कोई खुशबू नहीं।

समझ में नहीं आता, मैं क्या कह रहा हूँ, गाड़ी किधर भागी जा रही है? गाड़ी—बम्बई से पूना जानेवाली गाड़ी—हमेशा भागती रहती है। बम्बई से पूना और पूना से बम्बई—इसके जीवन की यही दो सीमाएँ हैं। शायद दो सीमाएँ इसकी और भी हैं—यानी इसके तले रेल के स्लीपर हैं और ऊपर टाटा-बिजली के तार। इन चार सीमाओं के बाहर यह गाड़ी नहीं जाती और जब जाती है, तो मर जाती है। तुम्हें याद होगा, जब एक बार हम दोनों इस गाड़ी से सफ़र कर रहे थे, और रोजारियो ने जलके तुम्हें लिखा था, 'काश तुम्हारी गाड़ी

रास्ते में उलट जाए' तो सचमुच यह गाड़ी पश्चिमी घाट की एक ढलान से लुढ़क गई थी। कितने ही मुसाफिर मर गए थे; कितने ही ज़ख्मी हुए थे; उम्र भर के लिए अपने बाजुओं और टाँगों को खो बैठे थे—क्योंकि गाड़ी अपनी हदों के बाहर चली गई थी। जब कोई जिन्दगी की हदों को चीरके निकल जाना चाहता है, तो उसके साथ यही होता है। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं। हैरानी सिर्फ इस बात की थी कि उस दुर्घटना में हम और तुम, रोजारियो की बद्दुआ के बाद भी जीवित रहे थे। तुम एक फूलों के तख्ते पर जा गिरीं और तुम्हारे पास मैं जंगली केले के पत्तों पर। मुझे जो बात इस समय याद आती है, वह अपना और तुम्हारा इस तरह अकस्मात बच जाना नहीं, बल्कि एक तितली की बात है। जहाँ मैं गिरा, वहाँ पास ही एक तितली उड़ रही थी। दूसरे ही क्षण वह एक झटके में मेरी उँगलियों में मसली गई। दो-तीन बार उसने अपने रंगीन और चित्रित पर फड़फड़ाए और फिर हमेशा के लिए मर गई। मुझे याद है, उसके परों का रंग मेरी उँगलियों से लगा हुआ था और वह अपनी पथराई आँखों से मेरी ओर ताक रही थी।

'क्यों, क्यों ? आखिर मैंने—एक मासूम तितली ने, फूलों पर मडरानेवाली तितली ने—तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? तुम क्यों बिना पूछे मेरी दुनिया में घुस आए ? उसकी शिकायत भरी निगाहें मुझे आज भी परेशान किए देती हैं। मैं जानता हूँ तुम मुझे मूर्ख कहोगी; मैं जानता हूँ मेरे पास अपनी इस मूर्खता का कोई जवाब नहीं। परन्तु मैं यह भी

जानता हूँ कि तुम्हारी इस दुनिया के पास जो तितली की दुश्मन है उसका कोई जवाब नहीं। आज भी इस गाड़ी में बैठा मैं यही सोच रहा हूँ, क्योंकि तितली के परों का रंग हाथों से छूटता ही नहीं। लेडी मैकबेथ के हाथों की तरह यह रंग कभी छूटता ही नहीं।

मगर मैं यह किससे कह रहा हूँ ? तुम तो लेडी मैकबेथ से भी बहुत आगे हो। तुम्हें तो पहले मेरे खून का रंग अपने हाथों पर नजर ही नहीं आयगा; और अगर आया भी, तो बहुत जल्द छुटा लोगी।

लो, गाड़ी भागते-भागते आखिर एक स्टेशन पर रुक गई। चन्द मुसाफिर उतरे और चन्द मुसाफिर चढ़ गए और डिब्बे में आकर बैठ गए। और कोई विशेष बात नहीं हुई। न कोई मरा न जिया, न कोई दुर्घटना घटी न गाड़ी ढलवान से लुढ़की। न किसी ने गाड़ी के नीचे जान दी। न किसी ने इश्क किया, न नफरत; न मुहब्बत, न दोस्ती। कुछ भी तो नहीं हुआ। बस, स्टेशन पर चन्द मुसाफिर उतरे चन्द मुसाफिर चढ़ गए। धान के खेतों में किसान काम करते हुए दीखते रहे। स्टेशन के बाहर एक चनेवाला चने बेचता रहा। और एक मजदूर औरत, जिसने हरे रंग की साड़ी पहिन रखी थी, जिसका किनारा गहरा लाल था, अपने नन्हें बच्चे को, जिसे वह उँगली पकड़ाए खड़ी थी, चने खिलाती रही। मैंने खाँसकर स्टेशन के प्लेटफार्म पर जोर से थूक दिया। बड़ी बुरी हरकत थी। इसे तुम कितना नापसन्द करती हो। लेकिन शायद इसी लिए मैंने प्लेटफार्म पर थूक दिया था। तुम्हें चिढ़ाने के

खयाल से नहीं, बल्कि इस खयाल से कि अगर तुम वहाँ होतीं, तो किस तरह नाक सिकोड़कर नाराजी प्रकट करतीं। यानी मैं तुम्हारी नाराजी के किसी कोने, में स्नेह और प्रेम की झलक ढूँढना चाहता था उस भिखारी कुत्ते की तरह, जो कूड़े के ढेर में रोटी के किसी टुकड़े को तलाश करता है। मैं अपने प्रति बड़ा निर्दयी हूँ, निर्दयी बनना चाहता हूँ। हर प्रकार के बौद्धिक खोल और छिलके उतारकर अपने आपको देखना चाहता हूँ। न जाने क्यों ? न जाने आज अपने आपको नंगा देखने की इच्छा क्यों जाग उठी है ? इससे क्या मिलेगा ? और तुम जो अपने शरीर को रेशम और होठों को रंग की तहों में हर समय छिपाए रखती हो, मेरी आत्मा को नग्न देख कर मुझसे और भी तो नफरत न करने लगोगी ?

गाड़ी धीरे-धीरे स्टेशन से निकली। अब हम घाट की पहाड़ियों के आँचल में थे। एकाएक बारिश की आड़ी-तिर्छी रेखाएँ सारे दृश्य पर खिंच गईं। खेतों में काम करनेवाले खेतों पर झुक गए और मेढ़ों पर रखी सूखे पत्तों की बनी छतरियों को अपने सिरों पर तानने लगे।

"गोआनी सुन्दरी, जो अपने पति के कन्धे से लगी सो रही थी, बारिश की आवाज़ सुनकर एकाएक जाग गई और मुस्कराकर अपने पति से कहने लगी—

"ओहराँ शाराँ, शोअश शारलाँ।"

मैं सही-सही उच्चारण नहीं कर रहा हूँ। उसके शब्दों का माधुर्य और उसके कंठ के उतार-चढ़ाव से आनन्दित हो रहा हूँ। वह गोआ की रहनेवाली थी और वहीं की भाषा

बोलती थी। यह पुर्तगीज़ सुन्दरी, जो अपने रक्त में भारत की गर्मी और नखशिख में एशियाई तीखापन लिए हुए थी, एक अजनवी परन्तु मधुर लहजे में बात कर रही थी। उसका गला भारतीय था, भाषा अजनबी, इसलिए दोनों ने मिलकर एक अजीब मिठास पैदा कर दी थी; एक अजीब मोहिनी—'ओहराँ शाराँ, शोअ्रश शारलाँ'—

न जाने वह क्या कह रही थी। पर मुझे तो यही मालूम हुआ कि जो वह कह रही है, वह यही है, बल्कि शायद इससे भी ज्यादा है। वह एक अजनबी गीत है; एक विदेशी राग है; मानसून की बरखा है, जिसके संगीतमय स्वर इस समय सारी घाटी पर छा रहे हैं।

उसका पति मुस्कराने लगा और फिर वे दोनों बाजू में बाजू डालकर बाहर देखने लगे। इन दोनों के पास उस गोआनी सुन्दरी की सास बैठी थी—काले रेशमी कपड़े पहिने, गले में चाँदी का क्रास, दुबला, पतला, उदास चेहरा। वह मिसरी ममी की तरह निश्चेष्ट और जड़ बैठी थी। वह बिल्कुल एक ऐसी उदास कैथोलिक वैरागिन दिखाई देती थी, जिसकी आत्मा ठंडी हो चुकी हो; और जिसके हृदय का कुतुबनुमा अब उस चुम्बक शक्ति की लहरों से विकंपित न होता हो जो उसके पास ही उस जोड़े के शरीरों और आत्माओं में काम कर रही थी। और यह सच भी है। जब हृदय के कुतुबनुमा ठंडे हो जाएँ, उस समय जिन्दगी कहाँ रहती है। उस समय चुम्बक शक्ति की बड़ी-से-बड़ी लहर भी स्पन्दन पैदा करने में असमर्थ रहती है। लेकिन वह तो बेचारी बुढ़िया थी; और दुखी थी;

और मिस्री ममी थी; इसलिए मुर्दा थी। तुम जो अपनी जवानी की ऊँचाइयों पर हो और हर समय हँसती रहती हो, तुम ?···क्या तुम सचमुच ज़िन्दा हो ?

'ओहराँ शाराँ, शोअश शारलाँ—न जाने वह क्या कह रही थी। उसके गले से शब्द, एक गाती नदी की भाँति बह रहे थे। और उसका पति धीरे-धीरे मुस्करा रहा था, और अपनी प्रेमिका के चेहरे की जैनूती रंगत पर चढ़ते हुए लाल रंग की झलकियाँ देख रहा था—गुलाबी, लाल, गहरा लाल। लड़की ने मूँगिया रंग की साड़ी पहिन रखी थी और उसकी यह साड़ी दो तीन जगह से फटी हुई थी। और उसके पाँव में पड़ी हुई सैंडिल भी नयी न थी। वह बटुआ जो उसके हाथ में था, उसके कोने भी मुड़े हुए थे। हर चीज पुरानी थी, बस उसका चेहरा नया था। उसकी आत्मा नई थी, उसकी मुस्कराहट नयी थी और वह स्वर नया था—बारिश की तरह शीतल और रसीला, मधुर और स्वप्निल।

उसके पति ने मुस्कराकर उसे बाहर कुछ देखने के लिए इशारा किया। लड़की ने निगाह उठाई और मैंने भी। बाहर एक ढलान पर एक चरवाहा और एक चरवाही भेड़ें चरा रहे थे। चरवाही की गोद में भेड़ का एक बच्चा था और चरवाहा चरवाही के कन्धे पर अपनी कोहनी लगाए बंशी बजा रहा था।

इस दृश्य में कोई खास बात न थी। बरसों का जाना-पहिचाना प्यारा दृश्य था। लेकिन एकाएक मैंने क्या देखा, कि लड़की ने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढाँप लिया

और खिड़की से मुँह फेरकर अपने पति की बाहों का सहारा लेकर, फूट-फूटकर रोने लगी।

मैं तो भौंचक्का रह गया। 'यह क्या बात हुई ? भला इसमें रोने की क्या बात थी' मैं आश्चर्य से उस रोती हुई लड़की और उसके परेशान पति की ओर देखने लगा, जो उसे उसी अपरिचित भाषा में कुछ कहकर सान्तवना देने, उसके आँसू पोंछने में व्यस्त था। एकाएक बूढ़ी मिस्री ममी ने उस नौजवान की ओर घूर-घरकर कुछ कठोर स्वर में कहा। नौजवान परेशान नज़र आया। लड़की पूर्ववत सिसक-सिसक कर रोती रही। बूढ़ी ने उसे अधिक बहलाने का प्रयास नहीं किया, बल्कि मेरे साथ की खाली सीट पर आकर बैठ गई और बाहर खिड़की की ओर देखने लगी। उसके स्याह रेशमी लबादे से किसी अजनबी खुशबू की महक आ रही थी—जैसे मिस्री ममी मुद्दत के बाद अपनी कब्र से बाहर निकली हो। एक पुरानी अजनबी-सी खुशबू थी। मैंने उसकी तरफ़ देखा। बुढ़िया बाहर देखने में लगी थी। डिब्बे में फिर पूर्ण सन्नाटा था—सिर्फ गोआनी सुन्दरी की धीमी-धीमी सिसकियों की आवाज़ आ रही थी।

मैंने बुढ़िया से पूछा—"इसके पति ने इसे क्या कहा, जो यह इस तरह रो रही है ?"

बुढ़िया ने एक क्षण के लिए मेरी ओर अचरज से देखा और फिर बोली—"तुमसे किसने कहा, यह इसका पति है ? यह तो इसका भाई है।"

"भाई है ?" मेरा मुँह आश्चर्य से खुले का खुला

रह गया।

"और क्या ?"—बूढ़ी तनिक कड़े स्वर में बोली—इसका पति तो जेल में है।"

"जेल में ?"

बूढ़ी ने सर हिला दिया—"उसे अट्ठाइस वर्ष की जेल हुई है।"

"अट्ठाइस वर्ष की जेल ? क्या कोई कत्ल किया था ?"

"नहीं।"

"डाका डाला था।"

"नहीं।"

"फिर अट्ठाइस वर्ष की जेल कैसे, समझ में नहीं आता।"

"समझ में आनेवाली बात भी तो नहीं है। मगर क्या किया जाय। वह मेरा बेटा है। उसे अट्ठाइस वर्ष की कैद हुई है। परसों के बाद मैं उसे कभी न देख सकूँगी। वे लोग उसे लिजबन लिए जा रहे हैं।

"लिजबन ?"

"हाँ, उसने गोआ के मुक्ति आन्दोलन में हिस्सा लिया है।"

"मगर ? मगर ?" मेरी निगाहें फिर उस लड़की की ओर घूम गईं, जो अपनी आँखें पोंछने में लगी थी।

"मगर यह लड़की तो बड़ी खुश नजर आती रही रास्ते भर..."

"हाँ, यह भी सत्याग्रह करने गोआ जा रही है। इस लिए कि इसका विचार है कि वे इसे भी बन्दी बनाकर लिजबन

ले जाएँगे। इसीलिए यह इतनी प्रसन्न भी थी। यह गोओं की नई पौध है"—बूढ़ी स्त्री ने भावना से कहा।

मैं आश्चर्य से स्त्री बूढ़ी माँ को, कभी उसकी बहू को देखता रहा। अन्त में मुझसे रहा न गया। मैंने पूछा—

"जब यह प्रसन्न थी, तो रोई क्यों ? ?"

"तुम भी निरे मूर्ख हो। हे भगवान ! ये मर्द इतने मूर्ख क्यों होते हैं ?" बूढ़ी ने दोनों बाहें ऊपर उठाते हुए कहा—"क्या तुमने नहीं देखा कि वह चरवाहा और वह चरवाही एक दूसरे को पाकर कितने प्रसन्न थे। तुमने उनकी निगाहें नहीं देखी थीं, उनकी निगाहों में उमड़ता प्यार देखकर क्या किसी सुहागिन को अपने पति की याद न आयगी ? ऊँह, तुम बड़े ही बुद्धू हो।"उसने मेरी ओर पीठ करली।

मैंने मुस्कराकर कहा—"एक और सवाल···।"

बूढ़ी ने घूमकर कहा—"तुम बहुत सवाल करने लगे हो।" "बस एक सवाल और बूढ़ी माँ, पूजनीय माँ। इतना बतादो, तुम्हारा बेटा अट्ठाइस वर्ष के लिए जेल जा रहा है, फिर भी तुम्हारी आँखों में आँसू नहीं हैं।"

बूढ़ी महिला ने मुझे घूरकर सिर से पाँव तक देखा। उसके मिश्री ममी जैसे चेहरे पर क्रोध की लालिमा झलकती दिखाई दी। वह बोली—

"माँ बेटे को जन्म देती है, किस लिए ? क्या केवल उसे जन्म देने के लिए, या उसके हाथों में दुनिया थमा देने के लिए ? हर माँ अपने बेटे को जन्म देती है, तो उसे एक दुनिया देती है। और जब वह बेटा बाप बनता है, तो वह अपने बेटे को

एक दुनिया देता है। इस प्रकार माँ, बाप और बेटे में एक नया रिश्ता कायम होता है। अगर माँ अपने बेटे को अपनी दुनिया से अच्छी दुनिया नहीं देती, चाहे वह थोड़ी-ही अच्छी हो, उसकी आकांक्षा उसके सामर्थ्य और उसके साहस से बहुत कम अच्छी हो, तो फिर उसके और गाय-बछड़े के प्रेम में क्या अन्तर है ?"

बूढ़ी ने बड़े क्रोध से मेरी ओर देखा, जैसे अपने बेटे को कैद के लिए मुझे दोषी समझ रही है।

मैंने आश्चर्य और आदर भाव से उस बूढ़ी औरत की ओर देखा जिसका बेटा अट्ठाईस वर्ष की कैद को जा रहा था और जिसकी आँख में एक आँसू न था; उस लड़की की ओर देखा जो अपने आँसुओं के बीच अब मुस्कराने की चेष्टा कर रही थी जैसे वह डोली में बैठी अपनी सुसराल जा रही है, पति के पास।

मोना ! हमने तुमने, ड्राइंग रूम में प्रेम किया है। परन्तु बाहर आकर तो इस प्रेमी को देखो। रोजारियो उस बैंक का कर्मचारी है, जिसके कारिन्दों और स्वामियों ने चार सौ साल से गोआ के गरीब निवासियों को लूटा है। न मैंने, न तुमने, न रोजारियों ने, इस सचाई पर गौर किया कि जब हम एक ड्राइंग रूम में बैठकर एक खुशबूदार प्रेम के फूल को दिल के गुलदान में सजाये सूँघ रहे थे, बाहर खून बरस रहा था और गोआ जल रहा था।

मोना ! सवाल तुम्हारे भूल जाने और मेरे मर जाने का नहीं है। उम्र साठ साल हो या एक सौ साठ साल की, यह

उम्र तो समय का एक क्षुद्र क्षण है, जो बिजली की भाँति कौंद कर बीत जाता है। आदमी के जीने से पूर्व और मरने के बाद भी समय का कौंदा लपकता रहता है। आकाश में पुराने तारे टूटते हैं, और नये तारे जन्म लेते हैं। प्रथवी सूर्य के गिर्द घूमती है और हमारे तुम्हारे खाक हो जाने पर भी घूमती रहेगी। तुम्हारे-हमारे भाग में समय का इतना ही क्षणिक कौंदा, आकाश का इतना सीमित-सा भाग, प्रथवी की इतनी थोड़ी-सी गर्दिश आई है। इसलिए सवाल जीवन-काल का नहीं है, सवाल जीवन का है। अपने जीवन में तुमने क्या किया ? किसी से सच्चा प्रेम किया ? किसी के साथ सद्-भावना प्रदर्शित की ? किसी शत्रु के बेटे को अपने बेटे की तरह प्यार से देखा ? कहीं अन्धकार में प्रकाश की किरण ले गए ! मोना ! जितनी देर भी हम जिएँ, किसी उद्देश्य को लेकर जिएँ ?

बोलो ?

बताओ ?

देखो मोना ! पश्चिमी घाट पर सूर्योदय हो रहा है। गाड़ी पूना के निकट पहुँच रही है। पश्चिमी घाट की श्रेणियाँ जगह-जगह से अलग हो गई हैं और दूर पूर्व में, घाटियाँ और मैदान और खेत दिखाई दे रहे हैं। सामने एक किसान धरती के वक्ष में अपने हल से धारियाँ डालता चला जा रहा है।

हमारी गड़ी ऊँचाई पर है और दूर तक पूर्व में धरती नीचे गिरती जा रही है।

देखो मोना ! आज क्षितिज से सूरज इस प्रकार उदय

होगा, जैसे धरती से इन्कलाब।

चारों ओर प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है। प्रकाश क्षण-प्रति-क्षण बढ़ रहा है। प्रभात हो रही है।

यह सच है जब तक सूरज नहीं निकलता, जीवन और काल की दिशा निश्चित नहीं होती। परन्तु सूरज निकलने पर पता लग जाता है, प्रकाश किस दिशा से आयगा। परन्तु प्रकाश के होने से पहले यह जगह भी रक्त रंजित-सी होती है, जहाँ से सूरज उदय होता है। फिर रक्त शोलों का रूप धर लेता है। और शोलें प्रकाश को जन्म देते हैं। फिर चारों ओर उजाला छा जाता है। काली-काली धरती हरे-भरे, खेतों का रूप ले लेती है। धुआँ घरों से निकलने लगता है और रेल की खिड़की के शीशों पर सोई हुई ओस की बूंदों में इन्द्र-धनुष के रंग जागने लगते हैं। घास पर शबनम मोती बन जाती है और पखेरू अपने पर फैलाये सूरज के स्वागत को दौड़ पड़ते हैं।

मोना! मैंने निश्चय कर लिया है, मैं मरूँगा नहीं। मैं लिजबन जाऊँगा और सलाखों के पीछे से उस प्रभात की प्रतीक्षा करूँगा, जब तुम मेरे देशवासियों के साथ, पर फैलाए, सूर्य के स्वागत को जाओगी।

—०—

काली सड़क, सफेद सड़क

काली सड़क, सफेद सड़क

"हाँ है—"हब्शी ने गर्म कोट के अन्दर की जेब से कागज के कुछ टुकड़े, जो बड़ी सावधानी से तह किये हुए थे, निकाले और उन्हें माँजी के सामने रख दिया। माँजी कुछ मिनटों तक उन्हें चुपचाप पढ़ती रहीं। फिर उन्होंने उसी सावधानी से उन्हें तह करके हब्शी को लौटा दिया। बोलीं–

"तुम तो बहुत काम के आदमी जान पड़ते हो। कोई भी अंग्रेज़ फौजी अफसर तुम्हें नौकर रख लेगा। मैं बात करूँगी।

"मगर मुझे अंग्रेज की नौकरी नहीं चाहिये"—जॉन ने धीरे से कहा।

उसने यह बात बड़ी कोमलता, बड़ी नम्रता और बड़े शांत भाव से कही थी। फिर भी हम चौंक पड़े।

"क्यों ?" माँजी अचम्भे और उत्सुकता से आराम कुर्सी से जरा आगे झुककर बोलीं।

जॉन हब्शी का शरीर सर्दी से काँप उठा। माँजी ने कहा—"तुम यहाँ अँगीठी के पास आकर बैठ जाओ।"

जॉन एक कुर्सी सरकाकर हमारे निकट बैठ गया। मैं उसके मुख पर एक घायल मुस्कान देख रहा था। चीढ़ की लकड़ियों के शोलों के प्रतिबिम्ब उसके चेहरे पर नाच रहे

थे। उसकी आँखें अधखुली और विषाद में डूबी मालूम होती थीं और जब वह हमारे निकट आकर बैठा, तो हमें उसके गठे हुए शरीर में निहित मौन बल का अनुभव हुआ। उसके खुरदरे मोटे हाथ खुले। उसने अपने बाएँ हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की दो उँगलियों से एक सड़क का चिह्न-सा बनाया और कहा—

"यह एक सड़क का सवाल है।"

"सड़क का ?" मैंने विस्मित होकर पूछा।

"एक का नहीं, दो सड़कों का—" हब्शी ने मेरी ओर मुस्कराते हुए कहा। अब उसकी आँखे भी मुस्करा रही थीं। जान पड़ता था वह बातें करने का बहुत शौकीन था। उसकी आवाज बहुत भारी थी। लगता था जैसे कोई कुएँ के अन्दर से बोल रहा है। वह हम तीनों की ओर देखकर फिर मुस्कराया और कहने लगा—

मेरा विचार है, मैं पहले एक ही सड़क से शुरू करूँ मादाम। एक सड़क—आज की सड़क नहीं, आज से हजारों साल पहले की सड़क, जब मनुष्य गुफा को छोड़कर जंगल की ओर चला। धीरे-धीरे उसके पाँवों ने जंगल की घास को दबा-दबाकर एक मटियाली-सी पगडंडी बनाई। मेरा विचार है मादाम, यह पहली सड़क होगी, जो मनुष्य ने बनाई—गुफा से जंगल की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर। इस सड़क से मनुष्य की रोटी का सम्बन्ध था। और मैं जो बवर्ची रह चुका हूँ मादाम, मुझे भली प्रकार मालूम है कि रोटी कितनी आवश्यक और उत्तम होती है। इसलिए समझता हूँ,

यह सड़क भी अति उत्तम, अति आवश्यक रही होगी।

और जब मनुष्य ने गुफा में रहना छोड़ दिया और मैदानों में आकर बस गया—एक छोटे-से मिट्टी के घर में या फूँस के छोंपड़े में—तो उसने एक और सड़क बनाई, घर से खेत तक, घर से पानी के चश्मे तक, घर से घास के विस्तृत मैदानों तक, जहाँ उसके रेवड़ चरते थे। यह सड़क जो मनुष्य के हृदय से चावल के दाने तक, पानी की बूँद तक, और भेड़ों की ऊन तक जाती है, यह भी एक अच्छी सड़क है। मादाम, हमारे अफ्रीका के हर गाँव में यह सड़क मौजूद है और मनुष्य के पाँव से एक मुलायम रेशमी फ़ीते की भाँति बँधी है।

"बातें क्या करते हो, कविता करते हो, जॉन।" मैंने कहा।

जॉन बोला—"कविता तो हमारी जाति की घुट्टी में पड़ी है। हम लोग अफ्रीका के सघन वनों की सन्तान हैं, जहां हरे-भरे झुरमुटों में लाल-लाल चौंचवाले तोते अपनी मधुर बोलियाँ बोलते हैं। जहाँ काले मुँह और लाल बालोंवाले बन्दर वृक्षों की टहनियों पर उछलते हुए, यहाँ से वहाँ, वनों के अन्तिम छोर तक, बिना धरती पर पग रखे पहुँच जाते हैं। जहाँ मादक नयनोंवाले हिरण रहते हैं, और लम्बी-लम्बी गर्दनोंवाले ज़िराफ़, शुतुर्मुर्ग रहते हैं, और कुलंग और·····।"

"परन्तु बात सड़क की हो रही थीं" माँजी ने जॉन को टोका।

जॉन हँसा।

"क्षमा करना मादाम। वास्तव में बात सड़क की हो रही थी। और मैं जो सड़क का बेटा हूँ। सड़क के बारे में इतना

जानता हूँ कि कोई दूसरों के बारे में क्या जानता होगा। अब मैं गाँव की सड़क से शहर की सड़क पर आता हूँ। इस सड़क पर मैं पैदा हुआ। यह सड़क मेरी माँ है और इस सड़क का खम्बा मेरा बाप, क्योंकि मुझे और किसी बाप का पता नहीं। मैं इस सड़क को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, क्योंकि इसने मुझे रोटी दी है, हँसी दी है, खेल तमाशे, गीत और प्रेम दिया है। यहीं पर मैं पकड़ा भी गया। यहीं पर पुलिसमैन की सीटी भी बजी है, यही सड़कें घरों को घरों से मिलाती हैं और खेतों की उपज को मंडियों और बन्दरगाहों तक ले जाती हैं। में जहाज़ों में काम कर चुका हूँ। मैं आप से कहता हूँ कि अगर सड़क न होती तो इतने बड़े-बड़े जहाज़ भी न होते और इतना बड़ा व्यापार भी न होता। इसीलिए यह सड़क अपने दोषों के बावजूद भी बहुत अच्छी है।

और फिर मनुष्य ने एक और सड़क बनाई—जंगी सड़क, जिससे एक देश के टैंक दूसरे देश के मैदानों को रोंद सकें; एक देश की तोपें दूसरे देश की गगन-चुम्बी इमारतों की राख और मलबे का ढेर बना सकें। मादाम, मैं बहुत पढ़ा लिखा नहीं हूँ। वास्तव में मैं बहुत पढ़ा लिखा आदमी नहीं हूँ, परन्तु मैं इस सड़क को जानता हूँ। ऐसी ही एक बर्मा से बंगाल तक बनाई गई, जब अंग्रेजों ने बर्मा के जंगलों से होकर बंगाल को बर्मा से मिला दिया। मैं वर्षों इस सड़क पर अपने स्वामी कर्नल फिट्ज़ जीराल्ड के साथ जाता रहा हूँ। और हमारे कनवाम में तोपें, बारूद, मशीनगनें और क्या कुछ नहीं होता था। मादाम, मेरे मस्तिष्क में बहुत-सी बातें स्पष्ट नहीं हैं।

बहुत-सी बातें मैं बिल्कुल नहीं जानता। परन्तु मैं एक बात स्पष्टरूप से जानता हूँ। यह सड़क अच्छी नहीं है। मुझे इस सड़क से घृणा है। यह सड़क, जो बाजरे के बजाय बारूद, टमाटरों के बजाय टैंकों और मछलियों के बजाय मशीन गनों के व्यापार का माध्यम है। मुझे यह सड़क तनिक पसंद नहीं हैं। शायद इस जैसी सड़कों की भी आवश्यकता होती होगी, परन्तु जाने क्या कारण है कि मेरा हृदय इस सड़क को स्वीकार नहीं करता। मेरे अफ्रीका में भी इन्होंने इस प्रकार की सड़कें बनाई हैं। जब ये सड़कें बन जाती हैं तो फौजें आती हैं और हमारा सारा अन्न, सारे फल, सारी खानों का सोता समेटकर लें जाती हैं। इसीलिये मुझे यह बर्मा रोड पसंद न आई।"

"परन्तु इसमें अंग्रेजों ही का क्या दोष ? ऐसी सड़क तो जापानियों ने भी बनाई होगी—थाईलैंड और हिन्दचीन को बर्मा से मिलाने के लिए।" मैंने आपत्ति उठाई।

जॉन हब्शी मुस्कराया। उसने उत्तर दिया—वास्तव में यह एक ही सड़क है। इसका एक सिरा जापानियों ने बनाया है, और दूसरा सिरा अंग्रेजों ने।

माँजी ने मुस्कराकर कहा—"क्या इसी कारण से अंग्रेज की नौकरी करना नहीं चाहते ?"

जॉन ने शिकायत के अंदाज में कहा—"आप लोग मेरी पूरी बात तो सुनते नहीं।"

"अच्छा, अच्छा सुनाओ" मैंने शीघ्रता से कहा" हमें क्षमा करो। अब आगे सुनाओ चचा।"

चचा शब्द से जॉन बहुत प्रसन्न हुआ। बोला—

"वहाँ बर्मा में सब लोग मुझे चचा कहते थे। हद तो यह है कि बीस वर्ष नौकरी में रखने के बाद स्वयं कर्नल फिट्ज जीराल्ड मुझे 'चचा' कहने लगा। बीस वर्ष मैंने उस अंग्रेज की नौकरी की। और धर्म की बात है कि वह बहुत अच्छा स्वामी था। यह सच है कि कभी-कभी बूटों से इतनी ठोकरें मारता था कि टाँगों की खाल छिल जाती थी। परन्तु वह अपने ढंग से स्नेह भी करता था। और सच पूछो तो उसकी यह मार-उस अत्याचार की तुलना में कुछ न थी, जो पश्चिमो अफ्रीका में हम पर किया जाता है। यह अंग्रेज तो उन अत्याचारियों के मुकाबले में देवता था। एक बार जब मैं बीमार पड़ा तो वह दो दिन तक मेरे बिस्तर से न हिला। रात-दिन एक कर दिया। जब एक बार डाक्टरों ने कह दिया कि मेरे प्राण नहीं बचेंगे, तो मैंने स्वयं उसकी आँखों में आँसू देखे।

"इसके बाद भी तुम अंग्रेज की नौकरी नहीं करना चाहते?" मैंने तनिक आवेश में आकर कहा।

जॉन हब्शी मुस्कराया, बोला–

"यह अंग्रेज नहीं, एक सड़क की बात है—बल्कि एक नहीं, दो सड़कों की···।"

मैंने कहा–"अभी तुम एक सड़क की बात कर रहे थे, अब दो हो गईं?"

जॉन बोला––

"बेटे, बेसब्र न बनो। तनिक धैर्य से सुनो। यह कोई परियों की कहानी नहीं है, जो मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। वे भी सुनाऊँगा कभी, मुझे बहुत आती हैं। इस समय मैं तुम्हें उस

जंगी सड़क की कहानी सुना रहा हूँ—बर्मा बंगाल रोड की। यह वह समय था जब जापानियों ने बर्मा पर अधिकार नहीं किया था। परन्तु आक्रमण कर रहे थे। उन दिनों रंगून से, माँडले और अन्य शहरों और कस्बों से, सफेद लोग और भारतीय, भागकर हिन्दुस्तान आना चाहते थे। मैंने जीवन में इतनी भीरुता और भगदड़ नहीं देखी। हर आदमी अपनी जान बचाने की फिक्र में था। बर्मा को, जिसका उन्होंने वर्षों नमक खाया था, बचाने की फिक्र किसी को न थी। रंगून के हवाई अड्डे से हवाई जहाज दिन रात कलकत्ते के लिए उड़ते थे। सारे यूरोपियन लोगों को हवाई जहाजों द्वारा रंगून से कलकत्ते भेजा जा रहा था। एक दिन मैं बाजार सौदा सुलफ लाने के लिए बाजार गया हुआ था। जब लौटा तो पता लगा कि कर्नल साहब मुझे अकेला छोड़कर हवाई जहाज से कलकत्ते चले गए। और मेरे लिए कुछ रुपये छोड़ गए। यह भी बड़ा उपकार किया कि कुछ रुपये छोड़ गए। रुपये न छोड़ जाते तो मैं उनका क्या कर लेता। साथ में मेरे लिए एक चिट्ठी छोड़ गए थे, जिसमें लिखा था कि मैं बर्मा बंगाल रोड से कलकत्ते और कलकत्ते से दार्जिलिंग पहुँचकर ड्यूटी पर हाजिर हूँ।"

मैंने पूछा—"मगर वह तुम्हे क्यों साथ न ले गए ? जब तुम उनके बीस वर्ष पुराने नौकर थे।"

"बीस वर्ष पुराना नौकर ही नहीं था, मैंने शिकार में दो बार अपनी जान पर खेलकर उनकी जान बचाई थी। तब उन्होंने मुझे वह सार्टीफिकेट दिया था, जो मैंने अभी आप को दिखाया।"

थोड़ी देर तक निस्तब्धता छाई रही। फिर माँजी ने कहा–"अब मैं समझी कि तुम अंग्रेजों के इतने विरुद्ध क्यों हो।" "आप अब भी नहीं समझीं"—जॉन ने मुस्कराकर कहा–"यह वास्तव में अंग्रेज का दोष नहीं है, एक पूरी सड़क का दोष है।।" "फिर वही सड़क।" मैंने जॉन पर व्यंग किया।

"हाँ, यह उसी सड़क का दोष है, बंगाल बर्मा रोड का, जिस पर पैदल चलकर मैं कलकत्ते पहुँचा। और एक मैं ही क्या, सैकड़ों हजारों हिन्दुस्तानी लोग मेरे साथ सागोन के सघन वनों से, मगरमच्छों से पटी हुई नदियों से, गहरी झीलों और बदबूदार दलदलों से होते हुए हिन्दुस्तान तक पहुँचे। सैकड़ों तो रास्ते ही में मर-खप गए। बहुतेरों को चोरों ने लूटा; डाकुओं ने मारा; बीमारियों ने ढेर किया; विषैले साँपों ने डसा। और सुरक्षा का, सहायता का, उपचार का कोई प्रबन्ध न था। क्योंकि जापानी आगे बढ़ रहे थे, इसलिए पैदल चलने वालों के भाग में असुरक्षिता और असुविधाएँ ही आई थीं। जितना प्रबन्ध था और जितनी सुरक्षा थी, वह केवल सफेद सड़क पर थीं।"

"यह, सफेद सड़क कौन-सी थी।"

"वह, जो आकाश में से होकर, और बादलों को छूती हुई जाती है—हवाई जहाजों की सड़क। इस सड़क पर किसी काले आदमी के जाने की इजाजत न थी। मिलिट्री ने हवाई अड्डा अपने अधिकार में ले रखा था। और केवल यूरोपियनों को वायु-मार्ग से निकाला जा रहा था। जो काले लोग थे, यूरोपियन नहीं थे, चाहे वे साँवले थे, गेहुँआ थे, या मेरी तरह

काले थे, वे सब उस काली सड़क पर चल रहे थे। चाहे वे मेरी तरह गरीब थे या लखपती थे, वे सब काली सड़क के साथ थे। मेरे साथ मिलिट्री के एक बूढ़े कन्ट्रेक्टर थे, सरदार गुरवचनसिंह। उनकी पत्नी, उनकी पुत्र-वधु और दो बच्चे मेरे सामने मारे गए, और हम लोग फिर भी आगे बढ़ते गये। आगे चलकर सरदार गुरवचनसिंह स्वयं बीमार पड़ गए। मैं कितने ही फासले तक उन्हें कन्धे पर उठायें-उठाये आगे बढ़ता रहा। आखिर एक रात उन्होंने मेरे कन्धे पर ही दम तोड़ दिया। मैं उनका अन्तिम संस्कार भी न कर सका और उनको वैसे ही डालकर आगे बढ़ गया। मुझे वह दिन याद है, मुझे एक अति सुन्दर बालक मिला, जिसे कदाचित उसकी माता थककर और हार कर एक झाड़ी के पीछे छोड़ गई थी। बालक बड़े ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। लोग उसका रुदन सुन रहे थे, परन्तु चुपचाप, ध्यान दिए बिना, आगे बढ़े जा रहे थे। बड़ा-ही सुन्दर और प्यारा बालक था वह। मैंने उसे गोद में उठा लिया और आगे बढ़ने लगा। थोड़ी दूर जाकर फिर एक झाड़ी के पीछे से रोने की आवाज़ सुनाई दी। घूमकर क्या देखता हूँ कि वहाँ भी एक बालक पड़ा बिलख रहा है। यहाँ भी किसी की ममता, किसी के ममत्व ने दम तोड़ दिया। मैंने उस बच्चे को भी गोद में उठा लिया और आगे चल पड़ा। चलते-चलते बहुत-सा फासला तै कर लिया। फिर सन्ध्या हो आई और सूर्य अस्ताजल की ओर ढलने लगा। मैं भूखा था, मेरे दोनों बालक भूखे बिलख रहे थे। मैं एक घाटी में से गुजर रहा था कि एक दलदल के किनारे झाड़ी के पीछे से फिर वही रोने की आवाज

आई। फिर कोई बालक रो रहा था। झाड़ी के पीछे जाकर देखा—हाय कितना सुन्दर सलोना बालक था। मादाम, तुम तो जानती हो बालक पालने के लिए होते हैं, नहलाने के लिए होते हैं, और दूध पिलाने के लिए होते हैं और सुन्दर वस्त्र पहनाकर मुख चूमने के लिए होते हैं। इस प्रकार झाड़ी के पीछे फेंक देने के लिए नहीं होते। परन्तु उस समय क्या करता। मैं भूखा था, बालक भूखे थे, और बीमारी, भूख और विष से इस काली सड़क पर उन बालकों को बचाने का कोई प्रबन्ध न था। मैंने उस तीसरे बालक को भी उठा लिया और आगे बढ़ने लगा। अब मेरे पैर भारी हो गए थे—भूख से और भार से। मुझसे चला भी न जाता था। फिर भी मैं आगे चल रहा था।

एक सौ गज और।

एक सौ फुट और।

दस पग और।

एक पग और।

और सहसा फिर मेरे कानों में वही रोने की आवाज आई—किसी नन्हें निराश्रित बालक के रोने की आवाज। मैंने इन तीनों बालकों की ओर देखा। फिर झाड़ी की ओर गया। वहाँ दो बच्चे बुरी तरह बिलख रहे थे। मै देर तक वहाँ चुपचाप खड़ा रहा। आखिर इस झाड़ी के पास बैठ गया। मैंने धीरे-से वे तीन बच्चे भी अपनी गोद से उतार दिए और मुँह फेरकर सड़क पर आगे बढ़ गया। ठीक उस समय जब ये पाँचों बालक बिलख रहे थे, मैंने अपने सिर पर हवाई जहाज़

के इंजिन की गड़गड़ाहट सुनी। मैंने सिर उठाकर ऊपर आकाश की ओर देखा। सफेद सड़क पर एक हवाई जहाज, शायद, किसी यूरोपियन को, उसकी पत्नी, उसके सफेद बालकों को रंगून से कलकत्ते ले जा रहा था। और नीचे पाँच बच्चे काली सड़क पर पड़े भूख से बिलबिला रहे थे। मैंने क्रोध में आकर अपनी मुट्ठी बन्द की और ज़ोर से चिल्लाकर कहा—'यू ब्लडी ब्लास्टेड ईडियट।'

क्षमा करना मादाम। परन्तु उस समय मैंने इससे अधिक कटु शब्द कहे होंगे, क्योंकि अवसर ही ऐसा था। उस समय मेरे मस्तिष्क में विचार आया कि काश यह सफेद सड़क का चालक इन पाँच निस्सहायों को भी बचा ले। परन्तु चालक अपने हवाई जहाज को लेकर कलकत्ते की ओर चला गया। आकाश खाली हो गया और मेरे हृदय में दूर-दूर तक निराशा ने पाँव पसार दिए।"

जॉन ने अपना सिर हाथों में ले लिया। थोड़ी देर के बाद वह बोला—

"मैं अभी तक उन बालकों का रोना सुनता हूँ। मादाम आपसे बता नहीं सकता, कभी-कभी रात के सन्नाटे में एक दम मेरी नींद उछट जाती है और मैं उन पाँचों बालकों को अपने पर रींगते हुए, बिलखते हुए, भूख प्यास से बिलखते हुए, देखता हूँ। इसमें किस का दोष है, मादाम! उन माँओं का जिनकी शारीरिक शक्ति मेरी शक्ति की तरह जवाब दे गई, या दो अलग-अलग सड़कें बनानेवालों का? मादाम अब मैं आपसे पूछता हूँ, मैं इन अंग्रेज़ फौजियों की नौकरी किस

प्रकार करूँ। उन बालकों की शक्लें मेरे सामने आ जाती हैं। मादाम मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। मैंने तो जीवन-भर साहब लोगों की चाकरी की है। इनकी सेवा ही, मैंने जीवन का प्रमुख कर्त्तव्य माना है। परन्तु अब सहसा मेरी चेतना में, मेरे मस्तिष्क में ये दो सड़कें आ गई हैं। ये दो सड़कें—काली सड़क और सफेद सड़क—मैंने हर जगह देखी हैं। जहाँ-जहाँ ये जंगबाज लोग गए हैं, इन्होंने दो अलग-अलग सड़कें बनाई हैं—काली सड़क और सफेद सड़क, इन सड़कों को मैंने वर्मा में देखा है, हिन्दुस्तान में देखा है, ये सड़कें मेरे देश अफ्रीका में भी मौजूद हैं और अमरीका में भी। काली सड़क, सफेद सड़क; काला शहर, सफेद शहर; काला स्कूल, सफेद स्कूल। और अब मुझसे यह सब कुछ सहन नहीं होता। अब मैं सफेद चमड़ीवाले स्वामियों की चाकरी नहीं कर सकता—यद्यपि मैं बेकार हूँ, भूखा हूँ।"

जॉन हौले-हौले सिसकियाँ लेकर कहने लगा—एक दिन मैं मर जाऊँगा। एक दिन यह साम्राज्य, यह अत्याचार, यह अन्याय भी मर जाएगा। एक दिन शायद यह कहानी भी मर जाएगी—जिस प्रकार वे निर्दोष बालक उस सुनसान, वीरान काली सड़क पर बिलख-बिलखकर मर गये होंगे। परन्तु उनका मौन विलाप शायद ही मर सकेगा। उनकी निस्सहायता कभी न मर सकेगी। उनकी मौत कभी न मर सकेगी। और संसार से ऐसे अत्याचारी लोगों का खात्मा हो जाएगा, तब भी यह घटना इतिहास के सफेद पन्ने पर कोढ़ के दाग़ की भाँति चमकती रहेगी, मनुष्य को लज्जित

करने के लिए, काले आदमी के लिये कि वह निर्दोष के लिए लड़ न सका; गोरे आदमी के लिये कि वह उसे बचा न सका।

मादाम, मैं तुमसे पूछता हूँ, क्योंकि तुम बर्मा में रहती हो। मुझे तो अपने कटु अनुभवों और कठोर जीवन के द्वारा एक थोड़ा-सा, अक्खड़-सा विवेक प्राप्त हुआ है। परन्तु मैं बता सकता हूँ, जब तुम्हारे बेटे ने मेरा मुँह देखकर अपने घर का द्वार बन्द कर लिया, मैंने उस काली सड़क को तुम्हारे द्वार तक आते पाया। मुझे एक क्षण के लिए ऐसा अनुभव हुआ कि मैं अभी तक बर्मा-बंगाल रोड पर चल रहा हूँ। यह काली सड़क अंग्रेजों ही ने नहीं बनाई, तुम लोग भी बनाते हो—धर्म के आधार पर, रंग के आधार पर, जाति-भेद के आधार पर। और एक दूसरे से अलग होकर चलना शुरू कर देते हो। क्यों ? क्यों ?

इन्सानों की बस्ती में ये दोनों सड़कें अलग-अलग चली जा रही हैं—काली सड़क, सफेद सड़क। यह कैसा भयानक सफर है ? ये क्यों इस तरह अलग-अलग चले जा रहे हैं ? घृणा के इस कोलाहल में प्रेम का राग क्यों सुनाई नहीं देता ? निस्तब्धता क्यों मानव-संसार को निगलती जा रही है ? कबरें क्यों बढ़ती जा रहीं हैं ? वीराने क्यों फैलते जा रहे हैं ? इस मानव की मंजिल क्या है ? काले आदमी की, गोरे आदमी की, अब्दुल रहमान की, श्यामसुन्दर की, जॉन हब्शी की ? क्या ये सड़कें कभी न मिलेंगी ? वह संगम, वह फल कभी न आयगा, जहाँ ये सड़कें मिलकर एक हो जाएँगी और सारा संसार मिलकर सोहाद्र का गीत गा सकेगा ?"

वह चुप हो गया।

निस्तब्धता चारों ओर से घिर आई थी और उसके बीच में वह बैठा था।

यकायक माँजी की ओर देखकर बोला—"इस घर के अलावा, यहाँ एक हिन्दुस्तानी घर और भी है। मुझे वहाँ भी नौकरी के लिए जाना होगा, क्योंकि मैं भूखा हूँ, थका हुआ हूँ और मुझे काम चाहिये।"

फिर वह मेरी ओर देखकर कहने लगा—"क्षमा चाहता हूँ, मैं काम की खोज में आया, और कहानी सुनाने बैठ गया।"

एकाएक वह छः फिट का आदमी खड़ा हो गया ऐसे आत्मविश्वास और गर्व से कि और भी ऊँचा दिखाई पड़ने लगा। उसने धीरे से कहा--"ये दोनों सड़कें टूट जाएँगी, काली सड़क और सफ़ेद सड़क और केवल एक सड़क बाकी रहेगी, और सारी मानव जाति उस सड़क पर चला करेगी। यह मैं इसलिये कहता हूँ कि मैं अफ्रीकी हूँ।"

जॉन हब्शी ने टोपी उठाकर माँजी को प्रणाम किया। माँजी की आँखों में आँसू छलक रहे थे। वह जब जाने के लिये मुड़ा, तो उन्होंने मुझे सम्बोधित करके कहा—"देखो अन्किल जॉन को उनके सोने का कमरा दिखा दो। अब से वह हमारे यहाँ ही रहेंगे"

—०—

फिर वही चाह

फिर वही चाह

लता धरमारकर की आयु जब छः साल की थी तो उसके माता-पिता ने डेढ़ सौ रुपए लेकर उसे बम्बई के एक गुण्डे दत्ता फाडकर के हाथ बेच डाला। लड़की सुन्दर थी इसलिए डेढ़ सौ भी मिल गए अन्यथा इस दुर्भिक्ष के समय में इस उम्र की लड़की के पचहत्तर भी न मिलते। मगर लड़की बहुत सुन्दर थी और दत्ता फाडकर का विचार था कि चार पाँच साल में पाल-पोसकर वह स्वयं उससे विवाह कर लेगा। परन्तु दो साल उपरान्त ही दत्ता फाडकर को एक जुर्म के सिलसिले में सात सौ रुपए की आवश्यकता हुई, क्योंकि पुलिस उसे बम्बई से निकाल बाहर करने पर तुली हुई थी। दत्ता को लता के बेचने का शोक तो बहुत रहा, परन्तु क्या करता। बम्बई में रहने के लिए उसे किसी-न-किसी प्रकार सात सौ रुपयों का प्रबन्ध करना ही था। आदमी बम्बई में रहे तो धन्धा चलता रहता है और जब तक धन्धा चलता है, लड़कियाँ मिलती ही रहती हैं। यही सोचकर दत्ता फाडकर ने लता धरमारकर को साढ़े चार सौ में एक दूध बेचनेवाले भय्या के हाथ बेच डाला। पचास रुपए का एक लकड़ी का पलंग बेचा। एक अमीर खोजे के शत्रु को रात-ही-रात में कत्ल कर दिया—केवल एक सौ रुपए

लेकर, यद्यपि काम डेढ़ सौ से कम का न था। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी-न-किसी तरह उसने सात सौ रुपए निश्चित तारीख से पहले ही एकत्रित कर लिए और अपने आपको निष्कासित होने से बचा लिया।

लता धरमारकर को दूध बेचनेवाला भय्या जिसका नाम बंसीलाल था और जो मेरठ का रहनेवाला था, गिरगाँव से गोरेगाँव ले गया। वहाँ उसका मवेशीखाना था। इसी मवेशीखाने से बाहर एक कोने में उसने अपने लिए एक छप्पर डलवा लिया था जिसमें वह स्वयं रहता था और जहाँ अब उसके साथ लता रहने लगी।

यद्यपि बंसीलाल मामूली से छप्पर में रहता था परन्तु उसे दूध बेचने से अच्छी आमदनी होती थी। जिस दिन पानी अधिक डालता उस दिन आमदनी अधिक होती थी और जिस दिन पानी कम डालता उस दिन कम होती थी। पानी का अधिक और कम डालना उसके मूड पर निर्भर था क्योंकि बंसीलाल को जुआ खेलने की आदत थी। जिस दिन वह जुए में ज्यादा हार जाता, दूसरे दिन दूध में अधिक पानी डालता। जिस दिन जीत जाता, उसके दूसरे दिन ग्राहकों को तनिक अच्छा दूध मिलता। दूध में पानी मिलाकर बेचने के अतिरिक्त बंसीलाल पान में कोकीन मिलाकर भी बेचता था। अन्धेरी और शिवाजी पार्क में उसकी पान की दूकानें थीं जिनसे उसे प्रतिदिन दस रुपए की आमदनी होती थी। बंसीलाल अच्छी परिस्थिति का खाता-पीता भय्या था—खाता कम था और पीता अधिक था। पीकर लता को वह घूर-घूरकर देखता था

और अपनी मूछों पर ताव देते हुए लता से कहता—"तीन वर्ष और ठहर जाओ—केवल तीन वर्ष—फिर मैं तुमसे विवाह कर लूँगा।"

लता केवल हँसकर रह जाती—

वह हिन्दुस्तानी भाषा नहीं समझती थी। मगर फाडकर के पास से बंसीलाल के पास आकर उसे हिन्दुस्तानी भाषा सीखनी पड़ी और यह बहुत अच्छा हुआ। बंसीलाल स्वयं थोड़ी-सी हिन्दी जानता था परन्तु जितनी भी जानता था वह सब उसने लता को सिखा दी। बंसीलाल का जी बहुत चाहता था कि लता शीघ्रता से जवान हो जाए। उसने सुन रखा था कि विदेश में ऐसी मशीनों का आविष्कार हो चुका है जिनमें अंडे सेने के लिए मुर्गी को इक्कीस दिन नहीं बैठना पड़ता। मशीन में इधर अंडे डालो और उधर से बच्चे निकालो। केवल दो घंटे में ही सारा काम हो जाता है। बंसीलाल सोचता—'क्या कोई ऐसी मशीन नहीं है कि जिसमें आठ साल की लड़की डालो और उधर से सोलह साल की युवती निकाल लो। मेरे परमात्मा! कितने साल बच जाएँगे।'

मगर भगवान की यह इच्छा न थी कि लता बंसीलाल के पास अधिक समय तक रहे। लता कोई पन्द्रह महीने बंसीलाल के पास रही। इसके उपरान्त एक रात को बंसीलाल ने नशे की पिनक और जुए की लत में लता को भी हार दिया! लता मंजूर कादिर कबाड़िए के हिस्से में आई। वह दादर में पुराने फर्नीचर का नीलाम किया करता था। मंजूर ने लता का नाम सकीना रख दिया। वह दो साल तक बड़ी लग्न और बड़े परि-

श्रम से काम करता रहा और धन एकत्रित करता रहा। क्योंकि उसका विचार सकीना से विवाह करने का था। वह स्वयं भी अच्छा बवर्ची था। उसने सकीना को बाईकला में सिलाई के एक स्कूल में दाखिल करा दिया और स्वयं बड़े परिश्रम से नीलामघर में काम करते हुए पैसे बचाने लगा, ताकि जल्दी-से-जल्दी विवाह हो सके। परन्तु भाग्य में कुछ और ही लिखा था। विवाह के कुछ महीने पहले ही शहर में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े प्रारम्भ हो गये और एक दिन जो सकीना बाईकला में सिलाई के स्कूल गई, फिर वापस नहीं आई। मार्ग में ही बाई-कला के एक गुन्डे गोमेज ने उठाकर बूढ़े यहूदी दाऊद के सुपुर्द कर दिया। दाऊद बड़ा ही कंजूस और काइयाँ था। काफी समय से वह लता को बाईकला तक आते-जाते देख रहा था। उसका अनुमान था कि यह लड़की बड़ी होकर बहुत सुन्दरी निकलेगी। धीरे-धीरे उसने लता उर्फ सकीना का सारा अता-पता मालूम कर लिया और किसी ऐसे अवसर की खोज में लग गया, जब उसे उड़ा ले। दाऊद का पेशा ही यह था। वह सदा दो एक लड़कियाँ पालता था और उनकी कमाई खाता था। यह हराम की कमाई नहीं हलाल की थी। वह उनके रहने के लिए स्थान देता था, उनके खाने पीने का प्रबन्ध करता था, उनके लिए कपड़े सिलवाता, उन्हें नाच गाना सिखाता था और फिर उन्हें बम्बई के किसी श्रेष्ठ होटल के किसी कैबरे में नौकरी दिलवा देता। लड़की को प्रतिमास थोड़े-से पैसे देकर सारा वेतन स्वयं हड़प कर जाता। लड़की बड़ी होकर दो चार साल तक तो अवश्य उसके वश में रहती, अन्त में निकल जाती। यह भी उसके फन्दे से

निकल जायगी, परन्तु तब तक तो सोने की मुर्गी अन्डे देगी। लता के सौन्दर्य को देखकर बूढ़े दाऊद ने अनुमान लगा लिया था कि यह मुर्गी उसके बैंक में कितने सोने के अंडे देगी, इसलिए उसने उसे बड़े प्यार और हिफाज़त से अपने पास रखा। एक नौकरानी उसकी देखभाल के लिए रख ली। नौकरानी, जिसका नाम रैचल था, उसको अंग्रेजी पढ़ाती। बूढ़ा दाऊद स्वयं उसे नाच सिखाता था और उसका पुराना पचपन बरस का मित्र पीटर जो बांदरा क्रिश्चियन-क्लब का प्रसिद्ध गायक था उसे गायन की शिक्षा दिया करता था। दाऊद ने लता के बाल कटवा दिए। उसके पाँव में ऊँची एड़ी के सैंडिल डाले; मुँह में अंग्रेजी भाषा रखी, हाथों में हवायन गिटार थमा दी। और लता उर्फ सकीना, लाना ओब्रायन बन गई। कोल्हापुर की एक मराठी लड़की आईरिश सुन्दरी बन गई। क्योंकि लता का रंग बहुत साफ था, उसके बाल सुनहरे थे और उसकी आँखों में एक ऐसी झलक थी कि वह इस देश की नहीं, वरन् किसी परियों के देश की ज्ञात होती थी।

लता को दाऊद के घर और तो सब सुख था, बस केवल एक दुःख था और वह यह कि बूढ़ा दाऊद कंजूस था। वह एक-एक पैसे को दाँत से पकड़ता था। दाऊद ने आज तक विवाह नहीं किया था। उसका कोई निकट सम्बन्धी भी जीवित न था। फिर भी पता नहीं उसे पैसे से क्यों इतना मोह था। दाऊद ने लड़की को भली प्रकार जाल में फांसने के लिए उसे अपनी पास-बुक भी दिखाई थी जिसमें साठ हज़ार से भी अधिक रुपए जमा थे। उस पर यहाँ तक दयालु हो गया

था कि उसने लाना ओब्रायन से विवाह करने का वचन तक दे दिया था। आज तक उसने अपने जीवन में किसी को ऐसा वचन न दिया था। फिर भी लता को याद था कि जब पहली बार वह तेरह वर्ष की आयु में वैस्ट एण्ड होटल के कैबरे में दाख़िल हुई, और घरपर पचास रुपए का एडवान्स लाई तो रास्ते में उसका केडबरी का मिल्क-चाकलेट खाने को जी चाहा। बूढ़ा दाऊद उसे जेब खर्च के लिए केवल दो आने देता था, जिसे वह प्रतिदिन बचाकर रखलेती थी। जब एक सप्ताह व्यतीत हो जाता तो कैडबरी का चाकलेट खरीदा करती थी। परन्तु आज तो उसकी जेब में पचास रुपए थे—उसकी अपनीकमाई के पचास रुपए थे। आज उसने चौदह आने का एक चाकलेट निश्चिन्त होकर खरीद लिया और बड़े चैन से अपने लाल-लाल नाखूनों से पकड़कर एक साफ सुथरी बिल्ली की भाँति खाने लगी। घर जाकर निश्चिन्तता से उसने शेष रुपए बूढ़े दाऊद के हाथ में दे दिए। बूढ़े दाऊद ने बड़े इत्मीनान से एडवांस के रुपयों को गिना और फिर पूछा—"चौदह आने कहाँ हैं ?"

लाना ने चाकलेट दिखाया।

बूढ़े ने चमड़े का हन्टर उठाया।

लता को चमड़े का हन्टर खाने का अभ्यास हो गया था। जब कभी वह नाच में त्रुटि करती थी या गाने के बोलों में या घर के किसी काम में जिसमें वास्तव में उसका अपराध होता था, वह प्रसन्नता से हन्टर खा लेती थी। परन्तु आज उसकी आत्मा विद्रोह कर रही थी। वह पीछे हटती गई। बूढ़ा आगे बढ़ता गया। लाना ने दोनों हाथ अपने मुँह पर रख लिए।

बूढ़े ने उसे नीचे गिरा दिया और उसकी पीठ पर जोर से हन्टर लगाने लगा। लाना जोर-जोर से चीखने लगी। परन्तु यह तो उसकी पुरानी आदत थी। बूढ़े ने उसके रोने की अधिक चिन्ता न की और जब तक पूरी तरह अपना गुस्सा निकाल नहीं लिया, उसे छोड़ा नहीं।

उसी रात्रि लाना ओब्रायन बूढ़े के घर से भाग गई।

जीवन में प्रथम बार उसने अपनी इच्छानुसार एक काम किया था। आज तक वह सदा दूसरों के भरोसे पर रही, दूसरों की संरक्षता में रही, दूसरों के जूते खाती रही, खरीदी जाती रही, बेची जाती रही और फिर खरीदी जाती रही। उसके मस्तिष्क में किसी दूसरे प्रकार के जीवन का चित्र ही न था। उसने किसी अन्य प्रकार का जीवन देखा ही न था। इस कारण अब घर से भाग निकलने पर वह चिन्तित थी। और चर्चगेट के स्टेशन पर बैठे-बैठे सोच रही थी कि कहाँ जाय? बूढ़े पीटर के पास? वह उसे फिर दाऊद के पास ले जाएगा। अपनी नौकरानी रैचल के घर? वह उसे फिर बूढ़े दाऊद के घर भेज देगी। वह कहाँ जाए?

उसे अपने जीवन के सब घर याद आए, जिनको वह अपनी छोटी-सी आयु में देख आई थी। कोल्हापुर से बाईकला तक उसे वह शाम याद आई, जिस रात दत्ता फाडकर उसे कोल्हापुर से लाया था। उसे बहुत जोर की भूख लगी हुई थी। उसकी माँ ने दत्ता फाडकर के पैसों से दाल-भात बनाया था। मगर फाडकर को गाड़ी पकड़ने की जल्दी थी। उसे इसलिए भी जल्दी थी कि कहीं सौदा करके माँ-बाप

मुकर न जाएँ। यद्यपि लता को भूख लग रही थी और वह रोने भी लगी थी, फिर भी दत्ता फाडकर उसे बलपूर्वक वहाँ से उठाकर स्टेशन पर ले गया था। घर से जाते-जाते लता की रोती हुई आँखों में एक झोंपड़ा था, जिसके बाहर चूल्हे पर दाल उबल रही थी। उसकी माँ सिर नीचा किए चूल्हे में राख कुरेद रही थी और उसका बाप मुँह मोड़े हुक्का पी रहा था। वह घर था या वह घर था जहाँ दत्ता फाडकर रहता था। ये कैसे-कैसे घर थे ? घर क्या होता है? विवाह क्या होता है ? प्रसन्नता क्या होती है ? मनुष्य अपनी इच्छानुसार कैसे रहता है ? ये स्त्रियाँ जो बाजार में बच्चों की उँगली पकड़े, माथे पर सुहाग के टीके लगाए इतनी निश्चिन्तता से चलती दिखाई देती हैं, ये किस संसार की स्त्रियाँ हैं ? इसी संसार में रहते हुए, एक ही शहर, एक ही गली और एक ही बिल्डिंग में रहते हुए, उसका जीवन इन स्त्रियों से इतना भिन्न क्यों है ?

लता के नेत्रों में आँसू आ गए। लता के साथ-साथ सकीना भी रोने लगी और मिस ओब्रायन भी, क्योंकि आँसू नाम में और धर्म में नहीं होते। वे तो मनुष्य की आत्मा में होते हैं जो सबको एक ही तरह रुलाती है और एक ही तरह हँसाती है।

अचानक लाना ने अनुभव किया कि किसी का हाथ उसके कन्धे पर है। उसने पलटकर देखा। एक अधेड़ उम्र की स्त्री, जो अपने यौवन-काल में बहुत सुन्दर रही होगी, उसे बड़ी कोमल दृष्टि से देख रही है। उसकी आँखों से भी आँसू गिर

रहे थे। इस अधेड़ उम्र की स्त्री ने मुख में कुछ न कहा, केवल उसे अपने गले से लगा लिया। लाना फूट-फूटकर रोने लगी।

इस रात लाना ओब्रायन इस अधेड़ उम्र की स्त्री के साथ बांदरा में बाबूलाल डांस-मास्टर के घर चली गई। वह स्त्री बाबूलाल डांस-मास्टर की पत्नी थी। वह फिल्मों में काम करता था—काम कम करता था, तलाश अधिक करता था। कभी-न-कभी उसे कोई छोटा-मोटा कन्ट्रैक्ट मिल जाता। जिन्दगी कभी बिल्कुल भूखे रहकर और कभी कम भूखे रहकर व्यतीत हो रही थी। अधेड़ आयु की स्त्री जिसका नाम सावित्री था, कभी-कभी फ़िल्मों मे एक्सट्रा का काम कर लेती थी, जिससे थोड़ी बहुत भूख मिट जाती थी। जब सावित्री लाना को अपने घर ले आई, और बाबूलाल ने उसका रूप रंग देखा, उसके उभरते हुए यौवन को देखा तो उसकी बाछें खिल गईं। अब पति-पत्नी में झगड़ा प्रारम्भ हुआ। बाबूलाल डांसर तो चाहता था कि लाना जो अब फिर लता बन गई थी, फिल्मों में नृत्य करे। परन्तु सावित्री चाहती थी कि लता को घर में बेटी बनाकर रखा जाए और इस प्रकार उसकी कमाई न खाई जाए। बाबूलाल यह भी चाहता था कि लता से विवाह कर लिया जाए और पत्नी बनाकर उसकी कमाई पर हाथ साफ किया जाए। थोड़े दिनों तक पति और पत्नी में घुसर-पुसर होती रही। अन्त में नौबत मार-पीट पर आगई और बाबूलाल ने सावित्री को मार-पीटकर घर से निकाल बाहर किया। सावित्री रोती-धोती अपने उस टैक्सी ड्राइवर दोस्त के पास चली गई, जिससे उसका गत छः-सात वर्षों से गुप्त सम्बन्ध था। बाब-

लाल ने लता को फिल्म में काम और विवाह का झाँसा देकर अपने घर में रख लिया। कुछ महीने तो चैन से व्यतीत हो गए, क्योंकि यद्यपि बाबूलाल ने लता से विवाह नहीं किया था, परन्तु उसका लता के प्रति व्यवहार एक दयालु प्रेमी पति जैसा था। लता को पहली बार जीवन में थोड़ा-सा सुख मिला—कुछ आनन्द, उल्लास की कुछ झलक। 'अच्छा तो यह सुख होता है विवाह का—जब लड़की दुल्हन बनती है, और लाल जोड़ा; पहनती है और आँखों में प्रसन्नता और विछोह के आँसू लिए हुए एक डोली में बैठ जाती है।' यद्यपि यहाँ न उसका विवाह हुआ, न कोई बरात आई, और न डोली गई थी, फिर भी लता ने बाबूलाल के चरण पकड़ लिए और उसे अपना देवता मान लिया।

कुछ महीने सुखपूर्वक व्यतीत हो गए। फिर बाबूलाल बेकार हो गया। घर में भुनी मूँगफली तक न रही। उसे कोकीन खाने की बुरी आदत थी। इसलिए जब उसके पास कोकीन के पैसे भी न रहे तो वह बिल्कुल बेचैन हो गया और एक रात अपने साथ फिल्म डाइरेक्टर डी० राय को बुला लाया। डी० राय बहुत पुराना और अनुभवी डाइरेक्टर था और कम-से-कम पचपन व्यर्थ की फिल्म बना चुका था। उसने लता को देखते ही भाँप लिया कि हीरा है, जो डांस-मास्टर की गुदड़ी में छिपा पड़ा है। यदि उसे गुदड़ी से बाहर निकालकर उस पर पालिश किया जाए और उसे रंगीन रेशम और साटन की पृष्ठभूमि में उभारा जाए तो पचपन व्यर्थ फिल्म बनाने वाले डाइरेक्टर का जीवन सुधर सकता है।

डी० राय ने लता को देखकर कहा—"मैं इस पर पालिश करूँगा। ऐसा अच्छा पालिश करूँगा कि····· ।" डी० राय के मुँह में पानी आ गया।

लता की समझ में कुछ न आया। वह रोने लगी। उसने बाबूलाल के पैर पकड़े, अपने बाल खोलकर बाबूलाल के पैरों पर डाल दिए और उसके पैर अपने बालों से बाँध लिए, परन्तु बाबूलाल नहीं माना। डी० राय ने बाबूलाल को अपनी फिल्म में तीन हज़ार रुपए का कान्ट्रैक्ट दिया था। फिल्म में डान्स-मास्टर के रूप में मिस मधुबाला और मास्टर साज सचोर काम कर रहे थे। फिल्म में यदि एक डान्स भी "चटक" गया अर्थात् सफल हो गया तो बाबूलाल का जीवन सुधर जाएगा। लता का क्या है ? सफलता प्राप्त हो जाने के बाद ऐसी लता सहस्रों मिलती रहेंगी।

बाबूलाल ने रोती हुई लता की चिन्ता न की और उसे धक्के मार-मारकर डी० राय के सुपुर्द कर दिया। लता बहुत रोई, चिल्लाई, क्योंकि यद्यपि बाबूलाल ने उससे विवाह नहीं किया था, फिर भी वह अपने हृदय में बाबूलाल को अपना स्वामी ही समझती थी। मगर बाबूलाल को कोकीन की और इसलिए तीन हज़ार के कान्ट्रैक्ट की तुरन्त ही आवश्यकता थी। जो आवश्यकता है वह यद्यपि आविष्कार की जननी है, परन्तु साथ ही पत्नी का तलाक और डी० राय की पालिश भी है। डी० राय ने कुछ महीनों में लता पर ऐसा पालिश फेरा, ऐसा पालिश फेरा कि कोल्हापुर की लता धरमारकर, मंजूर की सकीना और बाईकला की लाना ओब्रायन, फिल्मी जगत की जगमगाती हुई तारिका

"मिस रानीबाला" बन गई ।

अब उसे यह सब कुछ उस समय याद आया जब वह अपने वैभवशाली बैड-रूम में एक श्वेत प्लास्टिक के पलंग पर औंधी लेटी हुई सिगरेट पी रही थी । उसके सम्पूर्ण जीवन का चित्र सिनेमा की चलती हुई फिल्म की भाँति उसके नेत्रों के सामने से गुज़र गया । सारे हिन्दुस्तान में उसके सौन्दर्य की धाक थी । एक सुन्दर बंगला था । बैंक में एक लाख रुपया था । एक ब्यूक गाड़ी थी । एक एलशियन कुत्ता था और एक आज्ञाकारी पति था ।

वह सदा अपने साथ एक आज्ञाकारी पति रखती थी । अब तक उसने तीन बार विवाह किया था । और प्रत्येक बार उसने अपने पति को जूते की नोक के नीचे रखा था । उसकी साथी हीरोइन और उसके जाननेवाले लोग इस बात को बहुत बुरा मानते थे, बहुत समझाते थे परन्तु किसी के समझाने का उस पर कोई भी प्रभाव न पड़ा । किसी ने अकाल में उसे बेच डाला था; किसी ने जुए में हार दिया था; किसी ने एक कैबरे के लिए और किसी ने एक कान्ट्रैक्ट के लिए उसे दुत्कार दिया था । प्रत्येक बार वह विवाह करती थी और प्रत्येक बार वह लाल जोड़ा पहनती थी । सोने की नथ, माथे पर सोहाग की बिंदियाँ, पाँव में महावर और हाथों में मेंहदी रचाकर वह अपने को धोखा देना चाहती थी कि वह पन्द्रह वर्ष की कुमारी है; उसके माँ, बाप उसके घर में हैं; वह एक दुल्हन की भाँति लजाती हुई अपने बाबुल के घर जा रही है; वह मण्डप की वधू है, जहाँ विशेष मन्त्रों से उसका विवाह हो रहा है; शह-

नाई बज रही है। उसका भाई रो रहा है और वह अपने दूल्हे के पीछे-पीछे डोली में सवार होकर अपनी ससुराल जा रही है। जीवन का वह आनन्द जो स्त्री के जीवन में एक बार ही आता है, उसने तीन बार प्राप्त करने का प्रयास किया था। परन्तु प्रत्येक बार उसके मुँह में राख का-सा स्वाद आया था। क्योंकि जिस दिन वह लड़की से स्त्री बनी थी, उस दिन न कोई डोली थी, न लगन, न शहनाई और न सुहाग। केवल एक अन्धेरा कमरा था, एक बदबूदार पलंग था, एक टूटा-सा रोशनदान था, दो शराबी होंठ, कुछ सिसकियाँ और एक चीख·····।

कोई उससे उसकी सारी सम्पत्ति ले ले, सारा सौंदर्य, सारा जीवन ले ले और उसे केवल एक दिन दे दे—वह दिन जो उसके जीवन में कभी न आया था।

एकाएक नीचे बंगले के उद्यान में शहनाई कूक उठी और वह एक अपराधी की भाँति काँप उठी।

एक दासी ने उसके कमरे में प्रवेश किया और कहने लगी—"उठिए सरकार। लग्न की सब सामग्री तैय्यार है।"

उसने जलती हुई सिगरेट एश-ट्रे में बुझा दी। एक अँगड़ाई ली, शीशे में अपने लाल जोड़े, लाल माँग और लाल चूड़ियों की ओर देखा। फिर उसने अपने माथे पर ज़रा घूँघट खींच लिया और कमरे से बाहर चली गई।

आज उसका चौथा विवाह था।

दो प्रेम

: ४ :

दो प्रेम

मिस्टर रामलुभाया रंग से शलगम, होंटों से टिमाटर, मुखाकृति से अमरूद और लुढ़कने में थाली के बैंगन दिखाई देते थे। वनस्पति संसार के इतने गुण उनके व्यक्तित्व में एकत्रित हो गए थे कि यदि उनको मनुष्यों की पंक्ति के बजाए फलों और तरकारियों की प्रदर्शनी में रख दिया जाता तो प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते।

परन्तु यदि उनकी गणना आलुओं के बजाए आदमियों में होती है, तो इसका एकमात्र कारण यह है कि वे चलते-फिरते दिखाई देते थे और बहुधा बहुत तेज़ी से चलते-फिरते दिखाई देते थे। उनके हाथ-पैरों में बिल्ली जैसी फुर्ती, नेवले जैसी लचक और चाल में ममोले से समानता पैदा हो गई है। इस प्रकार उनकी गणना पशुओं में भी हो सकती है। और यह भी हो सकता था कि वे अपने घर में रहने की बजाए किसी चिड़ियाघर के पिंजरे में बन्द होते और हम हर इतवार को अपने बच्चों को साथ लेकर उन्हें देखने जाते और उन्हें मूँग-फली और भुनी हुई दाल खिलाते और आश्चर्य करते कि प्रकृति ने कैसे-कैसे अद्‌भुत जीव-जन्तु उत्पन्न किये हैं।

परन्तु मिस्टर रामलुभाया पशु नहीं, मनुष्य थे और उनकी गणना मनुष्यों में इसलिये होती थी कि वे प्रेम करते थे। यह

प्रेम ही तो है जो मनुष्य को पशुओं और वनस्पति से उच्च पद प्रदान करता है। प्रेम न हो तो मनुष्य और काशीफल में क्या अन्तर है ?

परन्तु मिस्टर रामलुभाया के प्रेम का वृत्तान्त तो अभी बहुत बाद में आयेगा। अभी तो यहाँ उनकी आँखों का वर्णन करना बाकी है। मिस्टर रामलुभाया के चेहरे पर उनका माथा और उनकी आँखें एक विशेष महत्त्व रखती हैं। आँखों से नीचे का भाग अन्य चेहरों का प्रतिरूप हो सकता है, परन्तु उनका माथा और उनकी आँखें अपनी ही हैं। ये आँखें हर समय इतनी व्याकुल, विकल और बेचैन रहती हैं कि उनकी रंगत कभी मालूम नहीं हो सकती। वे भूरी हैं कि काली हैं, काली हैं कि भूरी हैं, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। बस यही लगता है कि दो पारे-सी चंचल पुतलियाँ हैं, जो आँखों की सफ़ेदी में बड़ी विकलता से इधर-उधर घूमती रहती हैं।

और फिर इन आँखों के ऊपर उनकी भवें हैं, जिनका सम्बन्ध किसी भीतरी कमानी द्वारा उनकी पुतलियों से है, यानी ये भवें भी उनकी पुतलियों के साथ-साथ हरकत करती रहती हैं। ऊपर, नीच, दाँये, बाँये; पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—ये भवें हर दिशा में हरकत कर सकती हैं। कभी तो ये इन्द्रधनुष की भाँति तनी हुई दिखाई पड़ती हैं और कभी रेखा की भाँति सीधी। ये भवें कभी तो सुकड़कर हिटलर की मूँछें दिखाई पड़ती हैं और कभी फैलकर साँप की कैंचुली की तरह दिखाई पड़ती हैं। साँप अपनी कैंचुली छोड़कर चला

जाता है, परन्तु ये भवें कभी अपना स्थान नहीं छोड़तीं।

भवों से ऊपर मिस्टर रामलुभाया का माथा है। माथा क्या है, उनके व्यक्तित्व का महासागर है। यह कभी तो प्रशांत महासागर की भाँति शांत और निश्चल नज़र आता है; कभी इसमें वे ज्वार-भाटे आते हैं कि माथा लहरों से आन्दोलित हो उठता है, जिन्हें लोग प्रायः सलवटें कहते हैं। मिस्टर रामलुभाया के माथे की सलवटें बहुत प्रसिद्ध हैं, परन्तु इनकी व्याख्या बहुत कम लोग कर सकते हैं। मिसाल के तौर पर बहुत कम लोग जानते हैं कि जब उनकी दोनों भवों के बीच एक गहरी रेखा पड़ती है तो इसका मतलब यह होता है कि दफ्तर में उनका अपमान किया गया है। और जब उनके माथे पर चार सलवटें होती हैं तो इसका मतलब यह होता है कि वे प्रेम कर रहे हैं। जब तीन सलवटें होती हैं तो इसका मतलब यह होता है कि वे विचारमग्न हैं। जब ढाई सलवटें हों तो समझ लीजिये कि चिन्ता-ग्रस्त हैं। जब माथा बिल्कुल साफ़ हो, अर्थात् एक भी सलवट न हो तो समझ लीजिये कि कोई दोस्त उनसे कर्ज़ माँग रहा है और वे कह रहे हैं कि उनकी जेब ख़ाली है।

पारे जैसी जो चंचलता उनकी आँखों में विद्यमान है, वही उनकी बातचीत से भी ज़ाहिर होती है। उनकी वार्ता में विराम नहीं होते। वाक्यों के बीच अन्तर नहीं होता। शब्दों की कमर नहीं होती। इनके वाक्य और शब्द, धड़ से ऊपर स्याम देश के विख्यात जुड़वाँ बच्चों की भाँति जुड़े हुए, एक-दूसरे के साथ लगे-लगे, जादूगर के फीते की भाँति उनके

मुख से निकले चले आते हैं। मिसाल के तौर पर यदि उनको यह कहना है कि 'माफ़ कीजिये, क्या मैं यह पैन ले जाऊ', तो वे कुछ इस प्रकार कहेंगे—'माफकिजियक यामपिनले जाऊँ।' इसके बाद आप क्या कहेंगे ?

और आप कर भी क्या सकते हैं, क्योंकि इससे पहले कि आप कुछ कह सकें, वे आपका पैन लेकर और 'मैं अभी आया' कहकर गायब हो चुके होंगे। 'मैं अभी आया' वे दिन में कई बार अपनी बोलचाल में प्रयुक्त करते हैं। जब उन्हें कहीं जाकर शीघ्र लौटना नहीं होता, तो अक्सर वे चुटकी बजाकर यही कहते हैं—'मैं अभी आया।' और इसके बाद वे ऐसे गायब होते हैं जैसे गधे के सिर से सींग। उनकी इस विशेषता के कारण उनके बहुत से मित्र मिस्टर रामलुभाया को 'मिस्टर अभी आया' कहते हैं।

मिस्टर रामलुभाया अर्थात् 'अभी आया', न्यूयार्क रेडियो कम्पनी में नौकर हैं। यह कम्पनी न्यूयार्क में नहीं, देहली में है। रेडियो, बैटरी, माइक्रोफोन, लाउड स्पीकर, टेप रिकार्डर, पंखे आदि बहुत-सी चीजें बेचने और किराये पर देने की बहुत बड़ी दूकान है, जहाँ मिस्टर रामलुभाया अन्य पच्चीस आदमियों के साथ काम करते हैं। मिस्टर रामलुभाया वैसे तो इस दूकान पर एक क्लर्क भरती होकर आए थे, परन्तु आते ही इन्होंने रेडियो, बैटरी, माइक्रोफोन, लाउड स्पीकरों से वह छेड़छाड़ शुरू की कि थोड़े ही दिनों में खुद माइक्रोफोन फिट करने लगे, लाउड स्पीकर लगाने लगे, टेप रिकार्डर चलाने लगे, पंखे ठीक करने लगे। क्लर्क,

मज़दूर, मिस्तरी, मैकेनिक—सब के काम स्वयं ही करने लगे। दूकान का मालिक सेठ भग्गूराम भगवानी उनकी कार्य-कुशलता और फुर्ती से इतना प्रसन्न हुआ कि तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर उसने इनका वेतन अस्सी से बढ़ाकर एक सौ पच्चीस कर दिया। और वास्तव में मिस्टर रामलुभाया को काम करने का चाव भी है। अगर किसी ब्याह-शादी में लाउड स्पीकर फिट करने जाएँगे, तो न केवल लाउड स्पीकर फिट करके गाने सुनाएँगे, बल्कि गानों के बीच-बीच में एलान भी करते जाएँगे; चुटकले सुनाते जाएँगे; बढ़ते-बढ़ते शामयाने, बरात, घर के दरवाज़े से निकलती हुई स्त्रियों के लिए विस्तृत आदेश देते जाएँगे। थोड़ी देर में आपको मालूम होगा कि घर के बड़े-बूढ़े और बरात के दूल्हा मिस्टर रामलुभाया ही हैं। और वह जो लड़के का बाप है और लड़की का पिता है, सब निपट मूर्ख हैं, किसी को कुछ नहीं आता। और अगर सौभाग्य से मिस्टर रामलुभाया अपना माइक्रोफोन लेकर यहाँ न आ जाते तो यह शादी सम्पन्न हो ही न सकती थी। कुछ इस प्रकार का प्रभाव इतनी जल्दी डालते हैं कि चन्द घन्टों बाद ही आपको घर में बुला लिया जाता है, जहाँ आप चन्द मिनटों ही में माँ जी, बहन जी, मौसी जी, भाभी जी बना लेते हैं। और फिर औरतों के बीच बैठकर बड़े मज़े से ठंडा शरबत पीते हैं; रूमाल से अपना मुँह पौंछते हैं, अपनी पारे-सी चंचल पुतलियों को सुन्दर लड़कियों के बीच घुमाते जाते हैं। और थोड़ी देर बाद जब शादी हो जाती है तो आप सबसे पहले बिल की रक़म माँ जी से वसूल करके और 'मैं अभी

आया' कहकर ऐसे गायब होते हैं कि माँ जी पूछती ही रह जाती हैं कि उनका बेटा कहाँ गया, और कब आएगा।

परन्तु इन तमाम विशेषताओं के बावजूद, मेरे लिए और मेरी तरह सेठ भग्गूमल भगवानी की दूकान पर काम करनेवाले अन्य लोगों के लिए, मिस्टर रामलुभाया का व्यक्तित्व इतने आकर्षण का केन्द्र न बनता, अगर उन दिनों हमारे दफ्तर में एक नई लेडी टाइपिस्ट मिस डेज़ी सूज़ैल न आ गई होती। उसके आने से मालूम हुआ जैसे हमारी पंखों, माइक्रोफोनों और वाल्वों से अटी हुई दूकान फूलों से सज गई। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही औरत के आ जाने से हमारी दुनिया में बहार आ जाती है। चीजें सुन्दर ढंग से रखी जाने लगती हैं। बोलचाल में गाली का प्रयोग आश्चर्यजनक हद तक कम हो जाता है। अनियमित कहकहे सभ्य मुस्कानों में बदल जाते हैं। सुन्दरलाल, जिसकी पतलून की क्रीज कभी ठीक नहीं होती थी, अब साफ़-सुथरी और तलवार की तरह सीधी होती है। और मुहीउद्दीन जो हमारे मज़ाक करने के बावजूद तीन दिन से पहले कमीज़ न बदलता था, अब हर रोज़ नई साफ़-सुथरी कमीज पहन कर आता। जिस दिन डेज़ी आई, उस दिन कितने ही कन्घे खरीदे गए। कितने ही घरों में कमीजों और पतलूनों पर लोहा हुआ। कितनी बार आइने देखे गए। एक अज्ञात-सी थरथराई हुई सुगन्ध, जो एक सुन्दर स्त्री की कल्पना से पैदा होती है, कितने ही दिलों को लहका गई। सुन्दर स्त्रियों में कैसा जादू होता है! यह जादू फूल में नहीं होता। प्रभात के प्रकाश में नहीं होता। झरनों के गिरने और

अबाबील के उड़ने और बुलबुल के चहकने में नहीं होता। कैसा होता है वह जादू, जब फूल की महक, प्रकाश की मोहनी, अबाबील की उड़ान, झरनों का संगीत और बुलबुल का नग़मा एक ही स्वर-तान में सिमट जाता है। और जब वह खुलता है, तो उसका रुपहला कहकहा अबाबीलों की तरह व्योम में उड़ता हुआ मालूम होता है। और जब वह चलती है तो सफ़ेद साड़ी का गिरता हुआ पल्लु झरनों की याद दिलाता है और जब वह तुम्हारे निकट से गुज़र जाती है तो हज़ारों फूलों के तख़्ते के तख़्ते तुम्हारे रोम-रोम में खिलते-खिलते चले जाते हैं। ऐसा होना तो नहीं चाहिये, मगर ऐसा क्यों होता है ?

पता नहीं, मिस्टर रामलुभाया ने यह सब कुछ कहाँ तक अनुभव किया। परन्तु डेज़ी के आने से ऐसा अवश्य लगता था, जैसे रामलुभाया के अन्दर की बैटरी अधिक चार्ज हो गई या उसके अन्दर बिजली का वोलटेज बढ़ गया। वह बार-बार इस तरह उचक रहा था, उछल रहा था, तेज-तेज बातें करते हुए इस कोने से उस कोने तक आ-जा रहा था, जैसे उसकी टाँगों में अतिरिक्त शक्ति आ गई थी। उस दिन उसकी हर हरकत, उसकी हर चेष्टा डेज़ी को लुभाने के लिए थी। वह अपने अमरूद से चेहरे पर अपने टिमाटर से होंटों से हँसता हुआ बार-बार डेज़ी की मेज़ से गुज़रा। और उसे उस समय तक चैन न आया, जब तक उसने किसी इन्डैन्ट या इनवॉयस या किसी अल्लम-गल्लम बिल के सिलसिले में डेज़ी से बात न करली।

"मिस डेज़ीयापस किता हूँ।"

"बैग यू पार्डन" डेज़ी विस्मय से बोली।

एक क्षण के लिए तो रामलुभाया भी चकरा गया। फिर सहसा उसे ध्यान आया कि वह बहुत तेज़ी से बातें कर रहा है। इस लिए अब उसने धीरे-धीरे, रुककर अपने स्वभाव के विरुद्ध उस वाक्य को यूँ अदा किया—

"मिस डेज़ी, मैं आपसे कहता हूँ…"

चलिये इन्ट्रोडक्शन हो गया। दूकान में कुछ देर तक शांति से काम होता रहा। परन्तु लंच का समय आने पर मिस्टर रामलुभाया ने फिर उसी तरह भाग-दौड़ शुरू कर दी—जैसे मुर्गा मुर्ग़ी के गिर्द नाचता है। नाच के घेरे छोटे होते गए, छोटे होते गए। आख़िर घूम-घाम कर डेज़ी के कानों में आवाज़ आई :—

"मिस डेज़ीयाप लंच कहांखाएंगी ?"

डेज़ी ने अपनी घूमती हुई पलकें उठाकर अपनी बड़ी बड़ी रौशन आँखों से मिस्टर राम लुभाया की ओर इस तरह देखा कि वह बेचारा अपने होश-हवास खो बैठा। उसने उसी विस्मित कंठ में पूछा—

"बैग योर पार्डन ?"

"मिस डेज़ी, आप लंच कहाँ खाएंगी" मिस्टर रामलुभाया ने फिर धीरे-धीरे कहना शुरू किया। "मेरा मतलब है कि यहाँ से बहुत ही पास, एक बहुत ही सस्ता रैस्तराँ, यानी लंच, स्वीट डिश समेत आठ आने नौ पाई में, यानी कि…।"

हम सब जानते थे कि पास वाले रैस्तराँ टिट विट में लंच साढ़े बारह आने से कम में नहीं मिलता। रामलुभाया आठ

आने नौ पाई डेज़ी से दिलवाएगा। और बाकी रकम अपने जेब से डालेगा और डेज़ी को लंच खिलाएगा। यूं ही होता है हर जगह। सारी दुनियाँ में होता है इस तरह और होता रहेगा। मतलब राम-लुभाया का डेज़ी को राम करने का था। वह पूरा हो गया। जब वे दोनों रैस्तराँ से लंच खाकर लौटे, तो बिल्कुल भाई-बहनों की तरह बातें कर रहे थे। वास्तव में डेज़ी सुन्दर होने के बाबजूद दिल की बुरी न थी, जैसे अक्सर सुन्दर लड़कियाँ होती हैं। बेचारी अपने सुन्दर फ्राक, सुन्दर चेहरे और सुन्दर शरीर के बावजूद बिल्कुल भोली और मासूम थी।

बहुत से लोगों का विचार है कि वे लड़कियां जो होंटों पर लिपस्टिक लगाती हैं, गालों पर पाउडर और बातों में अंग्रेज़ी के शब्द प्रयोग करती हैं, बड़ी हर्राफा होती हैं। परन्तु यह धारणा कुछ अधिक ठीक नहीं। मैंने खालिस हिन्दुस्तानी घरानों में ऐसे पेचदार और गूढ़ स्वभाव की लड़कियाँ देखी हैं, कि अगर फ्राइड भी उनका अध्ययन करे तो दूसरे ही क्षण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जो, क्या समझा है आपने। उनके सामने ये दफ्तरों की डेज़ी-फेज़ी होती क्या हैं। अपनी चलत-फिरत के बावजूद अत्यन्त सरल स्वभाव, नादान बल्कि मूर्ख होती हैं। ज़रा देर में विश्वास कर लेती हैं, दिल दे बैठती हैं। और फिर एक दिन रोती हुई गिरजाघर के बजाए जच्चा खाने जा पहुँचती हैं।

मैं यह नहीं कहता कि डेज़ी भी ऐसी ही मूर्ख लड़की थी। निश्चय ही वह ऐसी मूर्ख नहीं थी। परन्तु वह सीधी-सादी, अपना काम कुशलता और तत्परता से करने वाली हँसमुख लड़की अवश्य थी। वह चालाक नहीं थी, पर मन की साफ़

थी। जो बात उसके मन में होती, सब से साफ़-साफ़ कह देती। दूसरे शब्दों में, वह बात जिसका हमारे मध्यम वर्ग की प्रेम-कहानी में कहीं स्पष्ट वर्णन नहीं होता, परन्तु अस्फुट स्वर में हर स्थान पर होता है, डेज़ी उस बात को छिपाने के हक़ में न थी। इसी लिए मिस्टर रामलुभाया को बड़ा धक्का पहुँचा, जब तीन दिन लंच खिलाने और एक दिन सिनेमा दिखाने के उपरान्त भी कमर में हाथ डाल देने पर डेज़ी ने एक जोर का तमाचा उनके गाल पर जमा दिया। बस इसके बाद कुछ न हुआ। न डेज़ी ने इससे आगे कुछ कहा, न मिस्टर राम लुभाया इससे आगे बढ़े। बात वहीं की वहीं समाप्त हो गई। यह बात भी नहीं कि डेज़ी कुछ नाराज हुई हो, या दूसरे दिन दफ्तर में मिस्टर रामलुभाया से बातचीत न की हो; या उसके साथ लंच न खाया हो, या फिर एक हफ्ते बाद उसके साथ सिनेमा न देखा हो। हाँ, यह अवश्य हुआ कि डेज़ी ने मिस्टर रामलुभाया के उछलने-कूदने वाले प्रेम के लिए एक सीमा निर्धारित कर दी। उसने शिष्टता और सभ्यता के तराजू में एक ओर प्रेम और दूसरी ओर विवाह को रख दिया। और मिस्टर रामलुभाया को मालूम हो गया कि उसका प्रेम जब तक धर्मकाँटे पर न तुले, उसकी डेज़ी उसे नहीं मिल सकती। अर्थात् जिस प्रकार वह उसे प्राप्त करना चाहता था, या जिस प्रकार उसने सुना था कि इस प्रकार की लड़कियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उस प्रकार उसे न पा सकेगा। और जब उसे इस तथ्य की अनुभूति हुई, तो उसके माथे पर चौथी सलवट पड़ गई और उसे अनुभव हुआ कि उसे डेज़ी से सचमुच प्रेम हो गया है।

प्रेम की यह अनुभूति यदि उसे किसी बाग़ में, किसी फुट-पाथ पर सैर करते हुए, या डेज़ी के साथ सिनेमा देखते हुए होती, तो वह तुरन्त उसको व्यक्त कर देता। परन्तु उसे यह अनुभूति दफ्तर में बैठे-बैठे, अचानक हुई, जब वह एक टेप-रिकार्डर को ठीक कर रहा था। उसने बड़ी बेचैन निगाहों से डेज़ी की झुकी हुई आँखों की ओर देखा। परन्तु दूकान में वह अपना प्रेम व्यक्त न कर सकता था। वहाँ रेडियो, पंखे और माइक्रोफ़ोन और बैटरी, बिजली के तार और स्विच थे। फिर भी उसका जी चाहा कि वह अपने सामने माइक्रोफोन रख कर खड़ा हो जाए और सारे संसार के सामने घोषणा करे :—

हैलो, हैलो, कालिंग एवरी बडी।
सुनो, मुझे डेज़ी से प्रेम हो गया है।
सुनो, मुझे डेज़ी से प्रेम हो गया है।

और बहुत सम्भव था कि अपने संयम-हीन स्वभाव से बाध्य होकर, एक माइक्रोफ़ोन उठा कर, वह इस बात की घोषणा कर भी देता, परन्तु ठीक इसी समय सेठ भग्गूराम भगवानी ने एक दुबली-पतली सांवली लड़की के साथ दूकान में प्रवेश किया और आते ही रामलुभाया को सम्बोधित किया—

"मिस्टर रामलुभाया! तुम जल्दी से आपके साथ—आप मेरी भांजी निर्मला हैं—कालिज चले जाओ। इनके कालिज में आज ड्रामा है। वहाँ माइक्रोफ़ोन और लाउड-स्पीकर फिट करने होंगे। जल्दी जाओ, बिल लेने की जरूरत नहीं—चार माइक ले जाओ और छः लाउड-स्पीकर, जल्दी।"

लोग कहते हैं मजनूं बहुत बड़ा प्रेमी था। परन्तु लोग यह भूल जाते हैं कि मजनूं को प्रेम करने की कितनी सुविधाएँ प्राप्त थीं। लैला पर्दों के पीछे थी और मजनूं जंगल में अकेला था। चारों ओर बस रेत के टीले थे और जंगल के हिरन और उनके सामने मजनूं 'मेरी लैला, मेरी लैला' कहता और सिर फोड़ता था। वह न किसी दफ्तर में नौकर था और न उसका कोई सेठ था। परन्तु आजकल के मजनूं को कितनी कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उसके पास न जंगल है, न रेत के नीरव टीले। बस दफ्तर की मेज-कुर्सियाँ हैं और सेठ को ताकती निगाहें।

इसलिए मिस्टर रामलुभाया ने बड़ी विवशतापूर्ण दृष्टि से डेज़ी को ओर देखा, और फिर माइक्रोफोन, लाउड-स्पीकर उठाए, मजदूरों को संग लेकर, सेठ की भांजी के साथ चला गया और चलते-चलते कह गया—

"अभी आया।"

× × ×

अब हमारे दफ़्तर के बाबुओं के बाल फिर उलझे-उलझे रहने लगे; कन्धे टूट गए और पतलूनों की क्रीजें बिगड़ गईं। बालों में तेल और कपड़ों में खुशबू न रही। मुहीउद्दीन फिर मैली कमोज़ें पहनकर आने लगा। सबके प्रयास, सबकी चेष्टाएं निष्फल रही थीं। हाँ, डेज़ी और रामलुभाया के सम्बन्ध पहले जैसे थे। बल्कि अब तो मामला आगे बढ़ता दिखाई पड़ता था। उस दिन डेज़ी ने अपने यहाँ एक विशेष दावत दी। मुझको, श्यामलाल को, जुम्मन मिस्तरी और मुही-

उद्दीन को बुलाया। रामलुभाया तो खैर वहाँ पर था ही। हम लोग खाने के साथ-साथ उनके प्रेम को भी गले से नीचे उतारते रहे। हमें अनुभव हुआ कि मिस्टर रामलुभाया अब विवाह करने के लिए तैयार हो रहा है! डेज़ी के प्रेम में उस मंज़िल में पहुँच रहा है जहाँ वह अपने माता-पिता के विरुद्ध जा कर डेज़ी से सिविल मैरिज कर लेगा। उसके माता-पिता बड़े रूढ़ीवादी थे और मिस्टर रामलुभाया के व्यवहार में उनके प्रति विद्रोह की भावना भड़कती दिखाई दे रही थी। ऐसा लगता था कि अपनी भावनाओं के आवेग में वह सामाजिक भेद-भावों और जात-पात की ऊँची दीवारों को फाँद जाएगा। हम तो ऐसा न कर सकते थे। हम तो अपने छोटे-छोटे घरों में, छोटे-छोटे दायरों में घिरे हुए इन्सान थे, जो दिन भर दफ्तरों में कोल्हू के बैलों की तरह चलते रहते थे, और रात को अपने घर की नाँद में मुँह मारकर, चारा खाकर, खुशी से दुम हिलाकर जुगाली करते थे, और फिर सो जाते थे। आजादी क्या होती है, प्रेम किसे कहते हैं, हवा कैसे महकती है, तारे कैसे एकाएक खिल-खिला पड़ते हैं, हमारे मस्तिष्क के अंधियारे क्षितिज पर इन अनुभूतियों का उदय न हुआ था। इसलिए जब हमने डेज़ी को और मिस्टर रामलुभाया को कागज के फूलों और रंगीन गुब्बारों से सजे-सजाए कमरे में सुन्दर वस्त्र पहने देखा तो ईर्ष्या और कामना से हमारे दिलों पर सांप लोट गए।

"क्या तुम्हारी शादी हो चुकी है?" श्यामलाल ने घबरा कर पूछा।

रामलुभाया ने हँस कर कहा—"हुई नहीं है, होने वाली है। इसीलिए तो आप लोगों को बुलाया है। यहाँ से तुम लोग हमारे साथ सिविल मैरिज रजिस्ट्रार के दफ़्तर में चल कर हमारी शादी कराओगे और गवाही के दस्तख़त करोगे।"

"और तुम्हारे माता-पिता ?"

रामलुभाया ने कहा—"मैंने उन्हें नहीं बताया। यह अभी तक एक रहस्य ही है, केवल तुम चारों दोस्तों को बताया है।"

डेज़ी बोली—"इस समय साढ़े बारह हैं। तीन बजे रजिस्ट्रार के यहाँ जाना है। मेरे विचार में आप खाना खा लें।"

डेज़ी ने बहुत अच्छा खाना बनाया था। और हम लोग उसके बहुत अच्छे खाने की प्रशंसा करते रहे। खाने के बीच में एक लड़का एक चिट्ठी लेकर रामलुभाया के पास आया, जिसको पढ़ते ही, मैंने देखा, मिस्टर रामलुभाया के माथे की सलवटें चार से ढाई रह गईं, और वह किसी गहरी सोच में खो गया। बाद में वह फिर पहले की तरह हँसने लगा। लेकिन जाने क्यों, इसके बाद मुझे उसकी हँसी फीकी और मजबूर सी प्रतीत होती रही। परन्तु मेरी यह भावना शीघ्र ही खाने और हँसी-मज़ाक और ब्याह की तैयारियों में खो गई। खाना खा कर डेज़ी कपड़े बदलने अन्दर चली गई; मुहीउद्दीन ने रेडियो छेड़ दिया और जुम्मन आराम करने लगा। इतने में डेज़ी ने अन्दर से आवाज़ दी।

"डार्लिंग, इतने में तुम भाग के टैक्सी तो ले आओ।"

"एक में छः आदमी कैसे जाएँगे ?" मैंने पूछा।

"तो दो ले आओ" डेज़ी अन्दर से बोली, "मगर देखो,

जल्दी लेकर आओ। वक्त हो रहा है।"

"अभी आया डार्लिंग।"

दो बज गए, ढ़ाई बज गए, फिर तीन बजे, मगर रामलुभाया नहीं आया। फिर चार बजे। हमने आस-पास के सब टैक्सी स्टैंड देख डाले—रामलुभाया का कहीं निशान न मिला। दफ्तर में टेलीफोन किया—वहाँ भी रामलुभाया का कोई पता न था। रजिस्ट्रार के दफ्तर में फोन किया, मगर वहाँ रामलुभाया डेज़ी के बिना कैसे जा सकता था। पुलिस स्टेशनों और हस्पतालों में टेलीफोन किए गए, कि कदाचित कोई दुर्घटना न हो गई हो। परन्तु रामलुभाया जो स्वयं एक बहुत बड़ी दुर्घटना है, उसे कोई दुर्घटना कैसे पेश आ सकती थी। रात के दस बजे तक हमने शहर का कोना-कोना छान मारा, मगर रामलुभाया न मिला।

डेज़ी चिन्तित होकर रोने लगी।

रात के दस बजे जब डेज़ी चिन्तित होकर रो रही थी, रामलुभाया दुल्हा का सेहरा बाँधे, अपने माता-पिता के साथ, निर्मला से विवाह करने सेठ भग्गूराम भगवानी के घर जा रहा था। वास्तव में हुआ यह था कि जिन दिनों वह डेज़ी से प्रेम कर रहा था, उन्हीं दिनों उसने सेठ की इकलौती भांजी से भी प्रेम का प्रस्ताव कर दिया। सच तो यह है कि जीवन आजकल इतना अस्थिर और अनिश्चित है कि कुछ पता नहीं लगता कि कब क्या हो जाए। देश, धर्म, व्यवसाय—किसी का कुछ स्थायित्व नहीं। देश बट जाते हैं, धर्म बदल जाते हैं, व्यवसाय चौपट हो जाते हैं। ऐसे परिवर्तनशील युग में कोई प्रेम पर

विश्वास करे तो कैसे करे। इसलिए मिस्टर रामलुभाया ने दो प्रेम कर लिए थे, कि अगर एक फेल हो जाए, तो दूसरा काम देता रहे। शुरू-शुरू में डेज़ी ने विवाह से इन्कार किया था, परन्तु बाद में वह राज़ी हो गई थी। इस बीच में रामलुभाया बराबर दूसरी लड़की से प्रेम लड़ाता रहा। वह लड़की चूंकि सेठ की इकलौती भांजी थी, इसलिए इन्कार करती रही। परन्तु जब उसे आभास मिला कि रामलुभाया डेज़ी से विवाह कर रहा है, तो उसने घबरा कर रामलुभाया को 'हाँ' का खत दिया, जो विवाह वाले दिन उसे हमारे सामने मिला। अब रामलुभाया बड़ी उलझन में पड़ गया। एक ओर डेज़ी थी--सुन्दर, स्वस्थ, और उसकी प्रेमिका। दूसरी ओर निर्मला थी, दुबली-पतली, साँवली, परन्तु सेठ की इकलौती भाँजी। रामलुभाया ने दोनों को तराजू में रखा--एक पलड़े में डेज़ी को, दूसरे पलड़े में निर्मला को। डेज़ी का पलड़ा भारी था। परन्तु एका-एक सेठ ने अपना सारा बोझ निर्मला के पलड़े में डाल दिया; और तराजू टूट गई·····।

मिस्टर रामलुभाया ने निर्मला से विवाह कर लिया है। वह आजकल हमारे दफ्तर में हैड क्लर्क है। सेठ उससे बहुत प्रसन्न हैं और उसे अपनी दूकान में पार्टनर बनाने की सोच रहे हैं।

आलूचे

आलूचे

जगमोहन पच्चीस वर्ष बाद पहलगाँव आया था। पच्चीस वर्षों में दुनिया कितनी बदल गई थी। वह स्वयं कितना बदल गया था। पहले वह दिन में एक बार शेव बनाता था, अब उसे दिन में दो बार शेव बनाने की आवश्यकता का अनुभव होता था। अपने कपड़ों के बारे में पहले वह कितना बे-परवाह था। उसे याद है, पहली बार जब वह पहलगाँव आया था, आज से पच्चीस वर्ष पहले, तो केवल एक कमीज़ और पतलून में घूमा करता था। उसके चौड़े ललाट और उसकी चौड़ी छाती को देखकर औरतें लजाकर गरदन झुका लिया करती थीं। अब वह छाती अन्दर को धँस गई थी, वे गाल पिचक गए थे, उस ललाट पर कितनी गहरी सलवटें पड़ गई थीं। उसे अब अपने छिदरे बालों की सफेदी छिपाने के लिए खिज़ाब की आवश्यकता होने लगी थी। अब वह केवल कमीज़ और पतलून में नहीं घूम सकता था। कोट, पतलून, टाई और वास्केट पहन कर घूमता था। जिससे कोई उसके अन्यान्य प्रकार के रोगों के शिकार शरीर की कुरूपता के दर्शन न कर सके। पच्चीस वर्ष पूर्व उसके शरीर से स्वास्थ्य और यौवन की महक आती थी। अब उसे रासायनिक सुगन्धों का सहारा लेना पड़ता था। वह स्वयं कितना बूढ़ा हो गया था, परन्तु यह पहलगाँव कितना जवान है। उतना ही सुन्दर और सर-सब्ज़, जितना आज से पच्चीस वर्ष

पूर्व छोड़ा था।

वैसी ही सुन्दर पहलगाँम की घाटी थी। वैसी ही मोती सी चमकीली और पारे सी चंचल लद्दर नदी थी। उसका चमकता हुआ निर्मल जल जगह-जगह से कैसा नीला-नीला था, जैसे किसी ने उसमें आकाश घोल दिया था। जगह-जगह पर कैसा हरा हो जाता था, जैसे चीड़ के झूमरों ने अपना सारा रस उसमें निचोड़ दिया हो। जगह-जगह कैसे उसकी लहरें किसी छोटे काही में लिपटे पत्थर के गिर्द घूमती थीं, जैसे गोपियाँ कृष्ण के चारों ओर कथाकली नृत्य कर रही हों। पूर्वी पर्वत-श्रेणियों पर देवदार और ब्यार के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, अपनी आँखों में शताब्दियों का गौरव लिए सूरज को तक रहे थे। और उनकी फैली हुई सब्ज़ बाहों ने जंगल में चारों ओर से रौशनी को अपने वक्ष में समेट लिया था। सूरज की किरणें दूर ऊपर से आई थीं और अब ब्यार, चीड़ और देवदार के वृक्षों के छतनारों में, घर की औरतों की भांति काम कर रही थीं। हर पत्ता किरण का घर था। रौशनी ने छाया को जन्म दिया था। जंगल में चारों ओर निस्तब्धता थी और चारों ओर छाया थी। केवल कहीं-कहीं जहाँ घने जंगलों में से आकाश नज़र आता था, वहाँ से सूरज की लाखों किरणें यूँ धरती की ओर भाग रही थीं, जैसे प्रकाश का प्रपात गिर रहा हो। आह, यह पहलगाँम कितना सुन्दर है--सब्ज़, सुनहरी मादकता में बसा हुआ। यहाँ का हर क्षण बनफ़शे के फूलों सा हँसता हुआ, हर सांस प्रेयसी के स्पर्श सा महकता हुआ। 'यह तो वही मेरे बाल्यकाल का सुन्दर पहलगाँम है। इन पच्चीस सालों में

दुनिया कितनी बदल गई है; मैं कितना बदल गया हूँ परन्तु यह पहलगाँम नहीं बदला'––जगमोहन ने सोचा।

जगमोहन ने अपनी स्मृति के क्षितिज पर से पिछले पच्चीस वर्षों पर एक दृष्टि डाली, और उसकी दृष्टि के सामने पहले और दूसरे महायुद्ध की कबरें और सलीबें उभरती चली आईं। उन कबरों की पृष्ठ-भूमि में कारखानों की चिमनियाँ धुआं उगल रही थीं। पहले कपड़े की एक मिल थी। पहले महायुद्ध में दो हुईं। दूसरे महायुद्ध में चार हुईं। कितनी लाखों क़बरों के बाद कारखाने की एक चिमनी बनती है। उसे अपनी यूरोप की यात्रा याद आई––पैरिस के शराबखाने, रोम की गलियों में घूमती हुई लैटिन सुन्दरियाँ, बर्लिन के रैस्तराँ में हर मेज़ पर एक टेलीफ़ोन, हर टेलीफ़ोन का कनेक्शन एक वेश्या से। टेलीफ़ोन उठाइये, लड़की हाज़िर। जगमोहन ने सारी दुनिया देखी थी। शंघाई के कैबरे; और रियो-डिजैनेरो और ब्यूनिसआइरस की घाटियों में नारियल की भाँति लम्बी और स्पैनिश गीतों की भाँति उत्तेजक औरतें; और उत्तम शराब; सुन्दर नृत्य; और ऊपर नारियल के वृक्ष पर चाँद, किसी मूर सुन्दरी के केशों में नटेला की भाँति लटका हुआ। हाय, यह संसार कितना सुन्दर था।

इन पच्चीस वर्षों में जगमोहन ने जी भर कर ऐश किए थे। दिल खोल कर अपना शरीर और अपना पैसा खर्च किया था। यह सच है कि उसका पैसा न घिसा था, परन्तु उसका शरीर अवश्य ही घिस गया था। उसने बढ़ती हुई मजदूरी और बढ़ते हुए इन्कम-टैक्स के बावजूद, हज़ार बेईमानियों से

अपना बैंक बैलेंस बनाए रखा था। कभी छटनी से, कभी कटौती से, कभी हिसाब की हेरा-फेरी से, उसने अन्यान्य प्रकार की बेईमानियाँ करके अपने रुपये को घिसने से बचाया। परन्तु उसका शरीर घिस गया। अब वह उसे टानिकों से, इन्जैक्शनों से, और हजारों तरह की उत्तेजक औषधियों से बनाए रखने की कोशिश में था। ये कोशिशें भी उसके शरीर से एक तरह की बेईमानियाँ ही थीं। उसे इसका ज्ञान था कि हर उत्तेजक औषधि अन्त में उसकी शक्ति को क्षीण करती है, जैसे मजदूर के साथ बेईमानी अन्त में उसकी शक्ति को क्षीण करती है। परन्तु जब तक वह जीता है, क्यों न अपने रुपये से और अपने शरीर से जी भर कर आनन्द लूट ले। मरने के बाद स्वर्ग तो केवल गरीबों को प्राप्त होता है।

जगमोहन उठ खड़ा हुआ। जिस पुराने देवदार के तने से टेक लगाए बैठा था, उसका सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ। क्योंकि उसे नीचे सड़क पर चलती हुई, फलों की टोकरी उठाए हुए, एक काश्मीरी युवती दिखाई दी। उसने संसार में सब प्रकार की सुन्दर स्त्रियाँ देखी थीं। इटली में बर्फ से बे-दाग शरीरों वाली रमणियाँ; इस्तमबोल के शराबखानों में नाचती हुई तुर्की हूरें, हर निगाह से शैम्पेन छलकाती हुई, सफेद फूलों का शृंगार किए हुए हवाई द्वीप की अर्धनग्न कुमारियाँ——अपने रूप और रंग में दो महाद्वीपों का सौन्दर्य समेटे। भाँति भाँति की सुन्दरता उसने देखी थी। परन्तु काश्मीर के सौन्दर्य का कहीं जवाब न था। ऐसा सौन्दर्य जो कमल की भाँति श्वेत और गुलाब की भाँति सुर्ख हो; जो चाँदनी की भाँति लजाए और सूरज की

किरणों की भाँति मुस्कराए; काश्मीर की आँखें जो कभी झील की भाँति शांत और रहस्यमयी दिखाई पड़ें और कभी झरने की भाँति खिल-खिला कर सारे भाव व्यक्त कर दें। काश्मीर के वक्ष, जो कभी तो बर्फ की भाँति शीतल और अस्पर्शित, और कभी शोले की भाँति यूँ दहकते हुए, जैसे जंगल में आग लग जाए। इतने अन्तर-विरोधों को अपने वक्ष में समोने वाला सौन्दर्य, उसने काश्मीर के सिवा कहीं नहीं देखा था। इसीलिए तो पहलगाँम का आकर्षण उसे इतने वर्षों बाद फिर खींच लाया था।

फलों की टोकरी उठाए हुए ढालवाँ सड़क पर से गुजरती हुई कश्मीरी युवती को देखकर उसे पच्चीस वर्ष पहले की एक घटना याद आ गई।

एक दिन वह पहलगाँम से चन्दनवाड़ी जाने वाली सड़क पर टहल रहा था। टहलता-टहलता दूर निकल गया। तीसरे पहर की सुहानी धूप थी। जब कभी चलते-चलते धूप की गर्मी से उसके गाल तप जाते थे, तो हवा के बफ़ीले झोंके उसके गालों को छूकर तपन को इस प्रकार उड़ा ले जाते थे, जैसे चित्रकार का ब्रुश चित्र से फालतू रंग को उड़ा देता है। वह धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगा। एकाएक उसे एक लड़की दिखाई पड़ी जो फलों की टोकरी सिर पर रखे पहलगाँम की ओर जा रही थी। लड़की उसके पास आकर मुस्कराई, वह भी मुस्कराया। लड़की ने फलों की टोकरी झुकाई, वह भी झुका।

"खूबानियाँ मीठी हैं ?" उसने पूछा।

"देख लो।"

वह उस लड़की की गहरी आँखों में खो गया।

लड़की ने एक ख़ूबानी टोकरी में से उठाकर उसे दिखाते हुए कहा—"बिल्कुल पकी हुई और तैयार हैं। इनकी रंगत देखो, सुनहरी और बेदाग़ है।"

वह उस लड़की के हाथों की गुलाबी, बेदाग़ जिल्द की कोमलता का अनुभव करता रहा।

"बहुत सस्ती हैं। दो रुपये की टोकरी है। टोकरी ले लो।"

उसने अपनी जेब से रेशमी रूमाल निकाला। उसे ज़मीन पर फैला दिया। चुनकर दो दर्जन ख़ूबानियाँ उसमें रखीं। लड़की को आठ आने दिए।

लड़की ने विस्मय और हर्ष से उसकी ओर देखा—"ये आठ आने तो बहुत ज्यादा हैं। और ले लो"—उसने ख़ूबानियों की ओर संकेत किया।

"फिर ले लेंगे। तुम कहाँ रहती हो?"

लड़की ने पीछे की ओर संकेत करके कहा—"सड़क के उस मोड़ के ऊपर मेरा घर है। ये ख़ूबानियाँ हमारे घर के पेड़ों की हैं। हमारे यहाँ ख़ूबानियों के चार पेड़ हैं।"

"कभी हम तुम्हारे घर आएँगे। अपने सामने पेड़ों पर से ख़ूबानियाँ उतरवा कर खाएँगे।"

"आओ ना।" लड़की खिलखिला कर हँस पड़ी।

लड़की टोकरी उठाने को थी कि जगमोहन ने आगे बढ़कर टोकरी उसके सिर पर रख दी। दोनों के हाथ एक-दूसरे से स्पर्श हुए। उस एक क्षण के स्पर्श में शताब्दियों की जवानी

गुनगुना उठी । जब से दुनिया बनी थी, जब से शोला भड़का था, जब से दिल धड़का था, जब से आँसू टपका था—कितने ही लाखों-करोड़ों वर्षों की सृजनात्मक आकांक्षा इस एक क्षण में तड़प कर रह गई थी । जगमोहन का सांस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगा । परन्तु उसने बहुत संयम से काम लिया और घूम कर आगे चला गया । वह चन्दनवाड़ी की ओर, वह पहलगाँम की ओर । अगले मोड़ पर जाकर उसने उस लड़की का घर देख लिया । खूबानी के चार पेड़ों वाला घर । घर के एक ओर छोटा सा टीला था, जिस पर नर्गिस के फूलों के तख़्ते के तख़्ते खिले हुए थे ।

अब वह इस घर को कैसे भूल सकता था ।

इसके बाद वह लड़की उसे कई बार मिली । कई बार उसने उससे खूबानियाँ खरीदीं । परन्तु हर बार वह खूबानियाँ बहुत कम लेता था, पैसे बहुत ज्यादा देता था ।

एक बार उसने पहलगाम के बाज़ार में से एक रेशमी रूमाल खरीदा । उसमें किशमिश, बादाम, अखरोट रखे । उनके ऊपर दस रुपये का नोट रखा । और रूमाल को अच्छी तरह बांध कर, उसने एक हातू को अपने साथ लिया । और उसे सड़क के मोड़ पर खूबानी के चार पेड़ों वाला घर दिखा कर कहा—

"वह लड़की जब भी किसी काम से बाहर निकले, यह रूमाल उसके हाथ में दे देना । फिर वह जो कुछ तुमसे कहे, मुझे आकर बता देना ।"

इसके बाद जगमोहन अपने तम्बू में लौट आया और हातू

की प्रतीक्षा करने लगा। बहुत देर बाद हातू आया। वह रेशमी रूमाल उसके हाथ में था। वह उसी तरह भरा हुआ था। जगमोहन का दिल धक् से रह गया। हातू ज़ोर से उसे हिलाते हुए आ रहा था। और वह गीत गा रहा था, जिसका भाव था कि जब पतझड़ आता है, तो चिनार के पत्ते प्रेयसी के कपोलों की भाँति लाल हो उठते हैं।

"कमबख्त" जगमोहन ने मन ही मन में झुंझला कर कहा--"उसने रूमाल लौटा दिया है और यह साला गा रहा है।"

हातू ने तम्बू के अन्दर आकर वह भरा हुआ रेशमी रूमाल जगमोहन के हाथों में थमा दिया। जगमोहन ने काँपते हाथों से उस रूमाल की गाँठ खोली। रूमाल के अन्दर न दस रुपये का नोट था, न बादाम, न अखरोट···नर्गिस के फूल फूल ही थे।

हातू ने मुस्कराते हुए कहा—"साहब बख़शीश।"

खूबानी के चार पेड़ों वाले घर में वह रात कितनी मधुर, मदमाती थी। कित्नी प्यारी, गुदगुदी और रसीली थी। उस रात की कल्पना ही से जगमोहन के दिल का कोना-कोना इस समय एक मादक आह्लाद से भर गया। वह तेज़-तेज़ कदमों से नीचे सड़क पर जाती हुई औरत की ओर बढ़ा।

औरत ने अपने फलों की टोकरी झुकाई, जगमोहन भी झुका।

टोकरी में मिश्री आलूचे थे।

"मीठे हैं!" जगमोहन ने पूछा।

"चख कर देख लो।"

"चख लूँ?" जगमोहन ने अर्थ-भरी दृष्टि से उसकी ओर

देखते हुए कहा ।

और काश्मीरी औरत के कपोल सेबों से अधिक सुर्ख हो गए । उसके कानों में चाँदी की बालियाँ झुमक-झुमक गईं ।

"हाँ" वह कमज़ोर आवाज़ में बोली । उसके साथ सात-आठ साल का लड़का भी था । वह उसे कहने लगी--

"साहब को एक आलूचा दो ।"

"यह लड़का तुम्हारा है ?"

"हाँ" औरत का हाथ लड़के के सिर पर गया ।

"इसका नाम क्या है ?"

"कादिर ।" वह गर्व से बोली ।

कादिर जगमोहन की ओर देखकर बड़े निर्भय भाव से मुस्कराया ।

जगमोहन ने एक आलूचा चखा । फिर उसने अपनी जेब से एक रेशमी रूमाल निकाला । उसमें थोड़े आलूचे रखे । एक रुपया औरत को दिया । आठ आने बच्चे को दिए ।

"ये किस लिए ।"

"बच्चा है, मिठाई खाएगा ।"

"हाँ" कादिर ने कहा--"मैं मिठाई खाऊँगा ।"

और उसने अठन्नी जेब में डाल ली ।

सुनहरी बालों का एक गुच्छा उड़ कर औरत के कपोलों पर आ रहा । उसने अपने बालों की लट को पीछे हटाते हुए कहा—"जरा यह टोकरी उठवा दो साहब ।"

जगमोहन ने टोकरी उठाई । उसके हाथ औरत के हाथों से मिले । और जगमोहन को आज से पच्चीस वर्ष पहले का,

खूबानी के चार पेड़ों वाला घर याद आया। परन्तु उस याद के बावजूद उसकी रगों में वह तपन, वह कम्पन, वह सिहरन वह संगीत न जागा। इस स्पर्श और उस पच्चीस वर्ष पहले के स्पर्श के बीच सैकड़ों औरतों के हाथ खड़े थे, जो 'पाउंड, डालर, फ्रैंक और दीनारों के बदले अपना सब-कुछ बेच रहे थे, भाव-ताव कर रहे थे।

और भाव-ताव सब कुछ होने के बाद भी भाव-ताव ही रहता है। संगीत कभी नहीं बन पाता।

जगमोहन ने व्यापारिक दृष्टि से औरत को सिर से पाँव तक देखा, जाँचा, तोला, परखा। सोचा, यह कितने में बिकेगी। फिर वह धीरे से मुस्कराया और आलूचे खाता हुआ सड़क पर चल दिया।

वह धीरे-धीरे उस औरत से दूर, परन्तु उसको निगाहों में रखे-रखे, चलता रहा। कभी-कभी वह औरत भी घूमकर देख लेती कि वह पीछे-पीछे आ रहा है। परन्तु उसने कुछ न कहा।

शाम होते-होते वह औरत आलूचे बेचकर अपने घर लौट गई। लकड़ी के पुल के उस पार, एक मनोहर कुंज में लकड़ी के तख्तों का बना हुआ उसका छोटा सा घर था, जिस पर फूलों की बेलें छा गई थीं।

जगमोहन देर तक फूलों की ओर देखता रहा। फिर लौट गया। इसके बाद कई बार जगमोहन को वह औरत मिली। कई बार उसने उससे मिश्री आलूचे खरीदे। औरत को आलूचों का रुपया दिया और कादिर को मिठाई के लिए अठन्नी।

कादिर जगमोहन से बहुत हिल गया था।

एक दिन जगमोहन ने बाज़ार से काश्मीरी रूमाल खरीदा। उसमें किशमिश, बादाम और अखरोट रखे। उनके ऊपर दस रुपये का नोट रखा। फिर रूमाल को गांठ लगाई और कादिर को देकर कहा—

"अपनी माँ को दे देना, और जो बात वह कहे, मुझे मेरे तम्बू में आकर बता देना।"

क़ादिर ने मुस्करा कर कहा—"बहुत अच्छा।"

सूरज लिद्दर के उस पार पहाड़ों में अस्त हो रहा था, जब कादिर लौटकर तम्बू में आया। इतने में जगमोहन ने शेव बना ली थी। अपने वस्त्रों में सुगन्ध लगा ली थी। अपनी बाँह में, स्वयं ही एक इन्जैक्शन लगा लिया था। और अपनी तरफ़ से तैयार होकर खुश-खुश बैठा था।

कादिर रूमाल को झुलाते हुए आ रहा था।

रूमाल भरा हुआ था।

जगमोहन की निगाहों में फूल ही फूल खिलते गए। उसे प्रतीत हुआ जैसे काश्मीर की दुल्हिन अपनी नर्गिसी आंखों से लजाकर उसकी ओर देख रही थी।

कादिर ने भरा हुआ रूमाल जगमोहन के आगे रख दिया।

जगमोहन ने काँपते हाथों से रूमाल को खोला।

रूमाल में किशमिश न थी; अखरोट भी नहीं थे; बादाम भी नहीं थे; एक फटा पुराना घिसा हुआ जूता था, जिसमें उसका दस रुपये का नोट रखा था। जगमोहन को लगा, जैसे किसी ने वह फटा हुआ जूता खींचकर उसके मुंह पर मारा हो। क्रोध से उसके गाल तमतमा गए।

उसने रोष में कादिर से पूछा—

"यह क्या है ?"

जवाब में कादिर मुस्कराया। फिर ज़रा सा हँसा। फिर ज़ोर से हँसा। फिर भागता हुआ और हँसता हुआ ढलवान से उतर गया। देर तक जगमोहन के कानों में उसकी हँसी सुनाई देती रही—

नए काश्मीर की हँसी—!!

नई शलवार

नई शलवार

पौ फट चुकी थी, किन्तु सूर्य्य अभी निकला न था। बेगमाँ ने पहाड़ की ढलवान से, जहाँ गाँव आबाद था, नीचे नदी की तलहटी पर दृष्टि डाली। धान की पनीरी की एक बड़ी सी तिकोन में उसे अपना पति काम करता हुआ दिखाई दिया। इतनी दूर से वह बिल्कुल खिलौना-सा दिखाई देता था--उन खिलौनों की भाँति नन्हा और सुन्दर, जिनसे वह बचपन में खेला करती थी। चीड़ के चनाठों को इट्ठा करके, उनमें लकड़ी की खपचियां आर-पार फँसा कर, उनके सिरों पर अखरोटों को खोखला करके वह लगा दिया करती थी—और खिलौने तैयार हो जाते थे। सरदार और उनके सिपाही और उनकी पत्नियाँ; पत्नियों के मूँछें नहीं होती थीं, और जो पुरुष होते थे, उनके चेहरों पर मक्की के भुट्टों के कोमल, रेशमी बाल लगा दिए जाते थे। और उसे याद आया कि एक बार उसकी गुल से केवल इसलिये लड़ाई हो गई थी कि गुल पुरुष खिलौनों में मक्की के भुट्टों की काली मूँछें लगाना चाहता था और वह लाल मूँछें लगाना पसन्द करती थी। वे दोनों बहस करते हुए गुत्थम-गुत्था हो गए थे और बेगमाँ ने क्रोध में आकर गुल का मुँह नोच लिया था। हाँ, अब गुल के चेहरे पर वह चिह्न नहीं था--बल्कि अब उलटा गुल प्रायः उसके चेहरे पर ऐसे लाल

चिह्न डाल दिया करता था, कि चश्मे पर जाते हुए उसकी सहेलियाँ उसे छेड़ा करती थीं। यह सोचकर उसके ओंठ काँपे और उसके कपोलों पर धीमी-सी लाली दौड़ गई। इसी प्रकार की लाली अब उत्तरी आकाश पर भी दौड़ रही थी जैसे सूर्य्य ने अपनी बेगमाँ का मुख चूम लिया था। चलते-चलते बेगमाँ लड़-खड़ा गई, और एक पत्थर पर बैठ गई और अपने सुनहरे परेशान केशों को सँवारते हुए, नीचे नदी की तलहटी की ओर देखने लगी।

धान की पनीरी का रंग चमकीला और गहरा हरा था। ऐसा हरा रंग तो उसने गाँव के बज़ाज़ के पास भी न देखा था, जिसके पास बड़े-बड़े सुन्दर रंग वाले कपड़े थे। पास ही देवदार के दो हरे-हरे छतारे बड़े गर्व से आकाश की ओर सिर उठाए खड़े थे। किन्तु उनका रंग भी तो इतना ही गहरा हरा था! इस हरे रंग में थोड़ी-सी स्याही भी घुल गई थी, जैसे उस झरने के पानी में होती हो जो बहुत गहरा हो।

पहाड़ और गाँव और घाटी और नदी सब नींद में खोए हुए थे! जंगल शान्त थे; झरने चुपचाप। वह स्वयं भी धीरे-धीरे पग रखती हुई नीचे उतर रही थी—बड़े-बड़े पत्थरों से बचती हुई, जो पगडंडी पर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। ऐसा मालूम होता था कि यह पत्थर भी सोए पड़े थे और उन्हें जगाना उचित न था। स्वयं उसके शरीर में भी तो एक नन्हा-सा खिलौना सो रहा था—उसके बचपन की कुँआरी आकांक्षाओं का मूर्त रूप। यह विचार आते ही वह डगमगाने लगी। उसके सारे शरीर में एक रौ सी दौड़ने लगी। यह रौ जिसमें नदी के पानी का सा कोमल प्रवाह और बिजली की सी तेज़ी और लपक

थी उसके धड़ और पेट और वक्ष में चक्कर काटने लगी। बेगमाँ को अपना साँस फूलता हुआ मालूम दिया। एकाएक उसके कानों में आवाज़ आई, जैसे कोई वृक्ष के तने पर कुल्हाड़ा चला रहा हो—खट-खट, खट-खट। उसने गलत समझा था कि वह या उसका पति ही सबसे पहले जागे हैं। गाँव का बूढ़ा चौकीदार रोशनदीन उनसे भी पहले उठा था और अब एक चीड़ के तने में से सुनहरी और पतली-पतली दीनियाँ निकाल रहा था।

एकाएक उसे विचार आया कि घर में तो दीनियाँ बिल्कुल खत्म हो चुकी हैं और आज वह दीनियों के बिना आग कैसे जलाएगी? उजाला कैसे होगा? आज रात तो उसे दीनियों के सुनहरी उजाले की और अधिक आवश्यकता है। आज रात वह दीनियों के शोलों के प्रकाश में अपनी नई शलवार पहन कर देखेगी। वह शलवार पहनकर और बाहें फैलाकर गुल के सामने एक नाचती हुई तितली की भाँति थिरक उठेगी, और गुल उसे गले से लगा लेगा! बेगमाँ के ओंठ काँपने लगे और उसके चेहरे पर लालिमा दौड़ गई और वह रोशनदीन के बिलकुल निकट जा खड़ी हुई। गाँव के बूढ़े चौकीदार ने एक क्षण के लिये बेगमाँ की ओर मुड़कर देखा और फिर अपने काम में संलग्न हो गया। वह अपनी छोटी कुल्हाड़ी की सहायता से चीड़ के तने में से दीनियाँ निकाल रहा था। तने के शरीर में एक गहरा घाव दिखाई दे रहा था और धरती पर दीनियों का एक ढेर इकट्ठा हो गया था।

"कहां जा रही हो बेटी?" रोशनदीन ने उसकी ओर मुड़े बगैर पूछा।

"नीचे, पनीरी के खतों में ।"

"गुल को मैंने सुबह इधर से जाते देखा था । शायद तीसरा पहर होगा । मैं जब भी दीनियाँ निकाल रहा था । यह तना कम्बख्त बड़ा सख्त है ।" बूढ़े रोशनदीन ने कुल्हाड़ी से जोर-जोर से चोटें लगाते हुए कहा ।

बेगमा चुप खड़ी रही।

"अब के धान की पनीरी अच्छी है । तुम्हारे खेतों की पनीरी भी बहुत अच्छी और जानदार दिखाई देती है···गुल कितने महीनों के बाद वापस आया है ।"

"तीन महीने के बाद ।"

"बारामूले में क्या करता था ? किसी लकड़ी के ठेकेदार के पास नौकर था न ?"

"हाँ ! पर यहाँ पर धान का काम संभालने वाला कोई न था । देवर बीमार है । इसीलिये मैंने बारामूले खत लिखवा भेजा था ।"

"तुमने अपने देवर को मेरी जड़ी खिलाई थी ?"

"और भी कई जड़ी-बूटियाँ खिला चुकी हूँ । अब जो बारामूले से दवा आई है, वह खिला रही हूँ ।"

अल्लाह फज़ल करेगा···किन्तु इस समय खेतों में क्या करने जा रही हो ?"

"वो·····पार वाले गाँव में दर्ज़ी को शलवार सीने दे रखी थी, आज उसने देने का वायदा किया है ।" बेगमा ने कमज़ोर, धीमे लजीले स्वर में कहा ।

"वाह"! बूढ़े रोशनदीन ने मुड़कर बेगमाँ की ओर मुस्कराते

हुए कहा।

"गुल बहुत अच्छा लड़का है·····बहुत अच्छा लड़का है।·····नई शलवार·····मुझे याद है (खांस कर) जब मेरी बीवी ने एक बार मुझ से रेशम के कपड़े की शलवार माँगी थी, और मैंने कहा था कि मैं श्रीनगर से लाऊँगा। पर श्रीनगर में मेरे पास पैसे खत्म हो गए और मैं रेशम की शलवार न ला सका। बड़ी नेक थी वह·····जिन्दगी भर रेशमी शलवार पहनना उसे नसीब न हुआ। मरते दम तक उसके दिल में यह चाह रही कि·····" बूढ़े चौकीदार की आँखों में आँसू भरे हुए थे, कुल्हाड़ी हाथ में कांप रही थी।

बेगमाँ ने धीरे से पूछा—"चाचा, मैं इनमें से थोड़ी-सी दीनियाँ ले लूँ ? हमारे यहाँ आज खत्म हो गई हैं और·····"

"हाँ, हाँ, बेटी, जितनी ज़रूरत हो ले जाओ·····मैं आज नदी के पार की घाटी पर जाऊँगा। आज कुण्ड पर मेला है और सड़क पर बहुत से सैलानी लारियों और ताँगों पर जाते हुए मिलेंगे। उम्मीद है मेरी सब दीनियाँ बिक जायँगी !"

बेगमाँ ने दीनियाँ उठाते हुए कहा—"सुना है कुण्ड पर रात को सैलानी लोग दीनियों की मशालें जलाते हैं ?"

"बेटी, अगर बाहर के लोग काश्मीर में न आएँ तो हम लोग भूखे मर जायँ·····अल्लाह बड़ा कारसाज़ है।"

बूढ़ा फिर खाँसने लगा, और कुल्हाड़ी से खट-खट करने लगा। बेगमाँ वहाँ से चल दी। दीनियों का गट्ठा उसने दुपट्टे में रख लिया था। शीघ्र-शीघ्र पग उठाती हुई वह नदी की तलहटी में पहुँच गई। एकाएक सूर्य निकल आया, और सारी

घाटी में जैसे एक हलचल-सी मच गई। कीड़े-मकोड़े और टीड्डे जो ओस के लबादों में लिपटे हुए बे-सुध पड़े थे, जाग कर घास पर फुदकने लगे। किरणों से छूकर धान की पनीरी का रंग और भी गहरा और चमकीला हो गया और उसकी फुगियाँ सागर की तरंगों की भाँति खेत की तिकोन में नृत्य करने लगीं। नदी का पानी जो पहले चुपचाप मालूम होता था, एकाएक संगीत छलकाने लगा। संगीत और प्रकाश, प्रकाश और जीवन, जीवन और गीत,—ऐसा प्रतीता होता था कि सूर्य्य की किरणों में कोई चेतन शक्ति छिपी पड़ी थी, जो हर उस वस्तु को सजीव कर रही थी, जिससे सूर्य्य की किरणें स्पर्श कर रही थीं।

गुल बहुत तेजी से काम कर रहा था। उसके लाल मुख पर पसीने की लकीरें थीं, और हाथों में धान की पनीरी। वह घुटनों तक खेत के पानी और कीचड़ में धँसा हुआ था और बहुत फ़ुर्ती से पनीरी उखाड़-उखाड़ कर खेत में ठीक फ़ासले पर लगा रहा था।

बेगमाँ खेत के निकट एक पत्थर पर बैठ गई। दोनों एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराए। प्रातःकाल के प्रथम प्रकाश का सोना उनकी आँखों में था, उनके दिलों में, उनकी आत्मा के कोने-कोने में था।

"बहुत जल्दी आन पहुँची हो ? अभी तो मैं आधे खेत में भी पनीरी नहीं जमा सका"—गुल ने मुस्कराते हुए कहा !

यह शिकायत नहीं, कृतज्ञता का प्रदर्शन था।

बेगमाँ ने मुस्करा कर और मुँह फेरकर पनचक्की की ओर

देखा, जो नदी के दूसरी ओर थी। फिर उसकी मुस्कान ने नदी से परे उस ऊँची घाटी को छू लिया जिसकी चोटी पर से मोटर की सड़क गुजरती थी। घाटी की समतल सतह से होकर उसकी मुस्कान उस चोटी से भी परे, ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों पर जा पहुँची, जहाँ विस्तृत और सघन वन और उत्तर की ओर एक छोट-सा गाँव था—वह दूसरा गाँव, जिसके दर्ज़ी को गुल ने बेगमाँ की नई शलवार सीने को दी थी।

यह मुस्कान घूमकर फिर गुल के मुख पर जा पहुँची—यह मुस्कान, यह दृष्टि, यह प्रकाश की किरण! बेगमाँ बोली—"और वापस भी तो आना है। अब चलोगे तो बड़ी मुश्किल से वक्त पर लौट सकोगे!"

उसकी बात सुनते ही गुल ने पनीरी हाथ से छोड़ दी, और खेत से बाहर निकल आया। और नदी के किनारे बैठकर अपनी नंगी टाँगों से कीचड़ उतारने लगा।

सुसी की शलवार, जिसकी लाल ज़मीन पर सफेद चम्पई फूल झिलमिला रहे थे, पहन कर बेगमा अत्यन्त प्रसन्न हुई। बोस-बाईस गज कपड़े की शलवार होगी—गुल की तीन मास की कमाई। बेगमाँ ने शलवार को दर्ज़ी के हाथ से लेते हुए अपने पति की ओर प्यार भरी दृष्टि से देखा। कुछ प्यार, कुछ अभिमान, कुछ चंचलता—हँस कर बोली, "और कमीज ? छींट की लूँगी—"

गुल बोला—"छींट की कमीज़ भी बनवा दूँगा। दो-तीन महीने और ठहर जा। तब तक शायद नन्हे के लिये भी कुछ बनवाना पड़े।"

बेगमाँ शर्म से लाल हो गई। दृष्टि नीचे करके बोली—"शर्म तो नहीं आती।"

गुल मुस्कराने लगा और उसने दर्ज़ी की ओर देख कर आँख मींच ली।

मार्ग में सम्बलू की बड़ी सी झाड़ी दिखाई दी, जिस पर नीला धारी की घनी बेल लिपटी हुई थी। इस झाड़ी की ओट में बैठकर बेगमाँ ने शलवार बदली। चलते-चलते वह नेफ़े की चुन्नट को सँवारती जाती थी, और बीस-बाईस गज़ की शलवार के घेरे और उसके सुन्दर फूलों को देख-देख कर मग्न हो रही थी। नई शलवार ने उसकी चाल में एक नई नज़ाकत और एक नया मतवालापन पैदा कर दिया था। उसकी चाल में अभिमान की भावना पैदा हो गई। फिर उसने एक अनोखी अदा से, जो गुल को बहुत प्यारी लगी, अपना सिर गुल के कन्धे पर रख दिया। वे कुछ समय तक इसी प्रकार चलते रहे, बाहों में बाहें डाले। दर्ज़ी का घर ओट में छिप गया था। धरती पर चीड़ के पीले-पीले नुकीले झूमर बिछे हुए थे और उनके पावों के स्पर्श से रेशम के कपड़ों की भाँति सरसराते थे मानो धरती ने भी एक नई शलवार पहन ली थी। चीड़ के पीले-पीले झूमरों की शलवार, जिस पर जगह-जगह बनफशे के फूलों की गुलकारी थी। वृक्षों की टहनियों पर जङ्गली पक्षी चहचहा रहे थे। और बादल, देवदार और चीड़ की चोटियों पर से धीरे-धीरे गुजर रहे थे! एक पगडण्डी वह थी, जो बन के वृक्षों के ऊपर तनी हुई थी और जिस पर बादलों में रहने वाले कोमल, सुन्दर और गौर-वर्ण राजकुमार और

राजकुमारियाँ एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले, कपोलों से कपोल मिलाए, प्रसन्नता से नाचते हुए जा रहे थे। गुल का मन भी एक अज्ञात आह्लाद से भर गया। उसने हौले से कहा "मैं तुझे छींट की कमीज़ अगले महीने बनवा दूँगा। यह कमीज़ अब पुरानी हो गई है और इस नई शलवार के साथ अच्छी नहीं लगती।"

बेगमाँ के सुन्दर ओंठ, फूल की पंखड़ियों की भाँति काँप उठे, और गुल ने शीघ्रता से उन्हें साँस की सुगन्ध और होटों की मदभरी ओस से बोझल कर दिया।

फिर वह एक झरने के किनारे बैठ गए, और गुल ने शरारत भरे स्वर में कहा, "कितने महीने हो गए हैं ?—चार या पाँच ?"

बेगमाँ कमज़ोर आवाज़ में बोली—"हटो भी, तुम्हें तो हर समय····· ।"

गुल उसे गुदगुदाते हुए पूछने लगा—"सच-सच बताओ, चार या पाँच ?"

बेगमाँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई "हाय···ऊँई···मैं मरी।"

गुल ने उसे गुदगुदाना छोड़ दिया। बोला—"मैं बताऊँ, एक नन्ही सी लड़की होगी।"

बेगमां बोली—"लड़का होगा। नन्हीं क्या तुम्हारे खेत में हल चलाएगी ? लड़का होगा, मेरी तो बरसों से यही आस है।"

गुल गम्भीर होकर बोला—"अम्मा भी यही चाहती हैं।"

कितनी देर तक वे दोनों उस झरने के किनारे मौन बैठे रहे, सुखद कल्पनाओं में लीन। जंगल के सन्नाटे, झरने के

संगीत और बादलों के नृत्य में उन्हें अपने भविष्य का एक सुनहरा चित्र दिखाई दिया। इस चित्र में एक नन्हा सा बालक भी था, जो अपनी माँ की गोद में किलकारियाँ मार रहा था; हँसते हुए, लड़खड़ाते हुए प्रथम पग उठा रहा था; काऊ की सोटी काँधे पर रक्खे, भेड़-बकरियों के गल्ले को बन में चराने के लिए ले जा रहा था; दरांतो से घास काट रहा था; अपने माता-पिता के कन्धे से कन्धा मिलाकर खेतों में हल चला रहा था। कहीं जैसे कोई शहनाई बज उठी और बेगमाँ और गुल चौंक उठे, और मुस्कराकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। शायद इस चित्र को उन दोनों ने ही देखा था।

इसी प्रकार धीरे-धीरे बातें करते हुए एक-दूसरे को छेड़ते हुए, बचपन और यौवन और आनेवाले जीवन के रुपहले क्षणों में घूमते हुए, उन स्वप्नों को याद करते हुए जो बीत चुके थे, और उन स्वप्नों को देखते हुए जो अभी आने वाले थे, वे वापस मोटर की सड़क पर आन पहुँचे।

सड़क पर इतनी रौनक न थी। फिर भी कभी इक्का-दुक्का तांगा या पैदल चलनेवाले सैलानियों की टोली दिखाई दे जाती थी। गुल ने बेगमां को बताया कि किस प्रकार इन सैलानियों के आने से काश्मीर के लोगों को हर वर्ष लाखों रुपए का लाभ होता है। श्रीनगर एक बहुत बड़ा नगर है। जिसके बीचोंबीच झेलम बहता है। जिस पर सात पुल बने हैं और जब धान की फसल कट जायगी तो वह अवश्य अपनी बेगमां को श्रीनगर ले जायगा। ताकि वह उन सुन्दर दृश्यों को अपनी आँखों से देख ले जिनके लिए संसार भर के सैलानी

वहाँ खिंचे चले आते हैं।

एक चिनार के नीचे चार-पाँच सैलानी ताश खेल रहे थे। बेगमां और गुल उनके निकट से गुज़रे। और बेगमां उन सैलानियों के सुन्दर कपड़ों की ओर आश्चर्य से देखती रही और वे सैलानी बेगमाँ के स्वस्थ और आदर्श सौन्दर्य को देखकर चकित हो गए।

चिनार के आगे एक छोटा-सा नाला था। उसे पार करके वे घाटी के ढलवान के समीप पहुँच गए। दूर नीचे नदी बहती थी, जिसके एक ओर खिलौने जैसी पनचक्की थी, जिसमें पानी का झाग बर्फ के गालों की भाँति उड़ता हुआ प्रतीत होता था। नदी के दूसरो ओर धान के खेत थे, जहाँ गुल काम किया करता था। उससे परे पर्वत के ऊपर उनका अपना गाँव था। सफेद कोठे, खड़िया मिट्टी से लीपे हुए, सीप के खिलौनों को तरह दिखाई देते थे। उनमें स्त्रियाँ नन्ही पुतलियों की भाँति भीतर या बाहर जाती हुई दिखाई देती थीं। सूर्य्य की किरणों ने गाँव को भी छू लिया था। ऐसा प्रतीत होता था कि जीवन भी पुतलियों का खेल है और इन पुतलियों की बारीक डोरियां, सूर्य्य की किरणों के तारों से बनी हैं।

जिस ऊँची घाटी पर बेगमाँ और गुल खड़े थे, उससे दो मार्ग नीचे की ओर जाते थे। एक तो सीधा ढलवान रास्ता नदी के खड्ड में जाता था और दूसरा तिरछा, पेचदार, जो बल खाता हुआ, नदी तक पहुँचता था। गुल ने कहा—"मैं इस छोटे रास्ते से नीचे जाता हूँ। इस हालत में तुम्हारे लिए यह मार्ग ख़तरनाक भी है और यहाँ फिसलन भी बहुत है। तुम दूसरे रास्ते से

आओ। मैं पनचक्की पर तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा।"

"इन्तज़ार?" बेगमाँ ने चमक कर कहा—"मैं तुमसे पहले वहाँ पहुँचूँगी।"

"एक बार पहले भी तुम मुझसे ऐसी शर्त लगाकर हार चुकी हो", गुल ने हँसते हुए कहा—"अब फिर लगाकर देख लो!"

"रहो", बेगमा ने पूर्ण विश्वास के स्वर में कहा—"देखो, अगर मैं पनचक्की पर पहले पहुँच जाऊँ तो तुम्हें कल ही नई कमीज़ के लिए कपड़ा मोल लेना होगा! और अगर···"

"और अगर" गुल ने शर्त का दूसरा रुख़ बताते हुए कहा—"अगर तुम हार गईं जो कल दिनभर मेरे साथ पनीरी के खेतों में, कीचड़ और पानी में...क्यों मंजूर है?"

"मंजूर है, लेकिन देखो, दौड़ना नहीं होगा, बस चलना होगा।"

गुल ने स्वीकृति में सिर हिलाकर ढलवान के रास्ते पर छलांग लगाई, और तेज़ कदमों से नीचे की ओर जाने लगा। बेगमाँ एक क्षण के लिये तो रुकी, फिर वह भी तेज़ कदमों से दूसरे रास्ते पर हो ली। अबकी बार वह अवश्य गुल को मात देगी।

गुल प्रसन्नता से सीटी बजाता हुआ नीचे उतर रहा था। उसे पूरा विश्वास था कि वह बेगमाँ से बहुत पहले पनचक्की पर पहुँच जायगा। 'मूर्ख लड़की'—उसने सोचा, 'बेगमा में अभी तक बचपन की शोखी और ज़िद्द जूँ की तूँ है। ऐसे ही बात-बात पर झगड़ पड़ती है। भला इस हालत में उसे शर्त बदनी

चाहिए थी ?'

एकाएक उसके दिल में विचार आया कि बेगमाँ को आवाज़ दे और उसे रुक जाने को कहे। परन्तु दूसरा रास्ता आँखों से ओझल हो गया था और उसकी आवाज़ वहाँ तक पहुँच न सकती थी। उसके पग धीमे पड़ गये। उसने सोचा, यदि वह शर्त हार जाय, और बेगमाँ को पनचक्की पर पहुँच जाने दे तो वह चंचल लड़की कितनी प्रसन्न होगी। वह मुस्कराने लगा और उसने निश्चय कर लिया कि वह शर्त हार जायगा। वह अत्यन्त धीमे-धीमे चलने लगा और अन्त में एक बड़ी चट्टान के समीप जाकर रुक गया। पाँच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट। उसने अपने मन में अनुमान लगाया कि यदि बेगमाँ धीरे-धीरे भी चली हो तो इस समय पनचक्की पर पहुँच गई होगी। यह सोचकर वह उठा और तेज़-तेज़ कदमों से नीचे उतरता हुआ पनचक्की की ओर जाने लगा। पनचक्की सामने दिखाई दे रही थी। किन्तु बेगमाँ अभी तक वहाँ न पहुँची थी। उसने तो शर्त हारने का पूरा प्रयत्न किया था, किन्तु अब यह बेगमाँ का अपना कसूर था कि वह अभी तक न पहुँच सकी थी। एकाएक उसके मन में एक विचार आया और वह मुस्कराने लगा। 'चंचल लड़की मुझे धोखा देना चाहती है। पनचक्की की दीवार की ओट में छिपी बैठी है।'

वह भागता हुआ पनचक्की के दूसरी ओर गया। किन्तु बेगमाँ वहाँ न थी। वह बेचारी अभी रास्ते में ही थी। गुल ने एक बार घाटी के ऊपर दृष्टि दौड़ाई और फिर उसने दो उंगलियों को मुँह में रखकर ज़ोर से सीटी बजाई, जो बचपन में

बेगमाँ को बुलाने के लिए बजाया करता था।

सीटी की आवाज़ पहाड़ों में गूँज कर खो गई !

कुछ क्षण इसी निस्तब्धता में बीते। फिर गुल ने ज़ोर से आवाज़ दी—"बेगमाँ !"

पहाड़ों के वक्ष में एक गूँज-सी उत्पन्न हुई, और फिर वही सन्नाटा छा गया।

गुल को बहुत क्रोध आया। चीख़कर बोला—"यह क्या शरारत है ? जवाब ही नहीं देती हो ? छिपकर बैठ गई हो ? बस, तुम्हारी यही बातें मुझे परेशान करती हैं। यह कैसा मज़ाक है ?"

गुल दूसरे रास्ते से ऊपर चढ़ने लगा। क्रोध से दाँत पीस रहा था। हरएक झाड़ी को ध्यान से देखता हुआ ऊपर चढ़ रहा था। 'यदि इस समय बेगमाँ किसी झाड़ी या चट्टान की ओट में दुबकी हुई मिल जाय तो'—

एक बड़ा-सा पत्थर ऊपर से लुढ़कता हुआ उसकी ओर आया। वह शीघ्र ही एक ओर हो गया। बस कुछ क्षणों का फ़र्क रहा, नहीं तो उसका सिर या टाँगें घायल हो जातीं।

"बेगमाँ, यह क्या बे-वकूफी है ?"

आठ-दस पत्थर एकदम नीचे लुढ़कते हुए आए। उसका पाँव फिसल गया और वह लुढ़कता हुआ नीचे नदी में जा गिरा। उसके हाथ-पाँव घायल हो गये और माथे से खून जाने लगा।

उसने चिल्लाकर कहा—"बेगमाँ ! बेगमाँ !"

दूसरे रास्ते के मध्य भाग में एक मोड़ के निकट, जहाँ

अँजोर का पेड़ लगा हुआ था और घनी झाड़ियाँ थीं, उसे दो व्यक्ति दिखाई दिये । उनकी टागें नंगी थीं और वे अपने हाथों में बड़े-बड़े पत्थर उठाए हुए थे।

गुल का जैसे किसी ने गला पकड़ लिया हो । उसके रक्त का संचार रुकने लगा। उसकी आँखों के आगे अंगारे नाचने लगे । वह भागकर रास्ते पर ऊपर चढ़ने लगा। किन्तु अब उन झाड़ियों के पीछे से तीसरा व्यक्ति आया और पत्थरों की जैसे वर्षा-सी आरम्भ हो गई । गुल ने पहचाना ये वही सैलानी थे, जो थोड़ी देर पहले घाटी के ऊपर चिनार के नीचे ताश खेल रहे थे । एक बहुत बड़ा पत्थर तेज़ी से नीचे लुढ़कता हुआ आया और अपने साथ गुल को धकेलता हुआ ले गया ।

गुल नदी के किनारे गिर गया, उसका गला रुँध गया था। और अब वह रुँधे गले से चिल्ला रहा था, घाटी की ओर हाथ फैलाए विनती कर रहा था--"खुदा के लिये·····मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?·····खुदा के लिये·····मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है·····तुम्हें खुदा का वास्ता·····अपने बीवी-बच्चों का वास्ता·····अल्लाह रसूल का वास्ता·····"

और ऊपर झाड़ियों की ओट में से चौथा व्यक्ति प्रकट हुआ । उसकी टाँगें भी नंगी थीं और उसके हाथ में सूसी की नई शलवार थी ।

गुल ने उठने का यत्न किया । उसके हाथों ने आस-पास के पत्थरों को अपनी हथेलियों में पकड़ने का प्रयास किया । किन्तु पत्थर उसके रक्त से लाल हो चुके थे और उसकी हथेलियों में से फिसलते गए और वह नदी के किनारे घुटनों के बल

झुक गया। एकाएक लाल सूसी की नई शलवार एक हवाई छतरी की भांति बल खाती हुई उसके सामने आन पड़ी और पतली-पतली सुनहरी दोनियाँ पत्थरों में बिखर गई।

ऐयाशी

ऐयाशी

पाँच अपर डिविज़न क्लर्क थे। सबसे बड़े लाला राम आसरे थे। उनसे छोटे लाला आसाराम, उनसे छोटे रामलाल, उनसे छोटे डी० एल० शर्मा, और सबसे छोटे सरदार अजीत-सिंह। ये सब लोग सैक्रेटैरियट के कैन्टीन में बैठे खाना खा रहे थे।

खाना खाते हुए ये ऐयाशी जैसे दिलचस्प विषय पर बातचीत कर रहे थे। उस समय उनकी आँखों में ऐसी काम-पिपासा और तरसी हुई कामुक चमक पैदा हो गई थी कि यदि उनकी पत्नियां उन्हें इस समय देख पातीं तो मारे शर्म के धरती में गढ़ जातीं या अपने बच्चों को लेकर मायके चली जातीं।

इस बातचीत में यद्यपि सब क्लर्क भाग ले रहे थे, परन्तु सरदार अजीतसिंह, जिसका बाप पी० डब्ल्यू० डी० में ठेकेदार था, सबसे बढ़-चढ़कर चहक रहा था। और अगर कोई चुप था, कोई बात नहीं कर रहा था, तो वह था लाला राम आसरे और इसका एकमात्र कारण यह था कि उसने जीवन भर कोई ऐयाशी न की थी। वह मुँह खोले दूसरों की बातें ऐसे सुन रहा था, जैसे उसे अलिफ-लैला की कोई कहानी सुनाई जा रही हो।

सरदार अजीतसिंह ने कहा—"अरे यार, ऐयाशी तो पहाड़ों

पर होती है, यहाँ शहर में क्या धरा है। एक बार हम मसूरी गए। दार जी (सरदार जी, सरदार अजीतसिंह के पिता) हमारे साथ थे। वहाँ स्केटिंग करते हुए एक दिन एंग्लो-इंडियन नर्स से मुलाक़ात हो गई। वह बहुत अच्छा स्केटिंग करती थी। परन्तु मैं उससे भी अच्छा स्केटिंग करता था—बल्कि उससे एक साल पहले, मसूरी में स्केटिंग की चैम्पियनशिप जीत चुका था। सो जनाब, वह नर्स हम पर··· ।"

लाला राम आसरे ने बातचीत की धारा वेश्याओं की ओर मोड़नी चाही। लाला आसाराम ने भी हाँ में हाँ मिलाई, क्योंकि वह भी लाला राम आसरे की तरह कभी पहाड़ पर न गया था। हाँ, एक बार अपने मित्रों के साथ एक वेश्या के कोठे पर गाना सुनने गया था। इसलिए वह ऐयाशी का अपना कारनामा सुनाना चाहता था।

मगर सरदार अजीतसिंह ने एक न चलने दी। चमक कर बोला—

"अजी क्या बात करते हो लाला राम आसरे जी। वेश्याओं के कोठों पर जाने को तुम ऐयाशी कहते हो ? हा-हा-हा—निरे बुद्धू हो। जिन्दगी भर तो दिल्ली से बाहर नहीं निकले। तुम क्या जानो ऐयाशी क्या चीज है ? अजी साहब, एक बार का जिक्र है कि हम डलहौज़ी गए। दार जी हमारे साथ थे। डलहौज़ी से दस मील दूर गरम पानी का एक चश्मा है, जिसके बारे में मशहूर है कि उसमें नहाने से खाल के सारे रोग दूर हो जाते हैं। सो जनाब, हम वहाँ पहुँच गए। वहाँ दूर-दूर से पहाड़ी लड़कियाँ नहाने

आती हैं। वहां पर हमने एक पहाड़ी लड़की देखी—बड़ी सुन्दर।

लाला आसाराम ने अपने होंट चाटते हुए पूछा—"जी० बी० रोड पर जो मीरा गाने वाली है, उससे भी सुन्दर ?"

"अजी मीरा की क्या हस्ती" सरदार अजीतसिंह ने भड़क कर कहा—"उस पहाड़ी लड़की के सामने मीरा तो पानी भरे। सो जनाब, हमने सुना था कि पहाड़ी लड़कियाँ अच्छे गाने पर जान देती हैं, और मुझे गाना बहुत अच्छा आता है। गढ़मुक्तेश्वर के मेले में इनाम ले चुका हूँ, यही सोचकर मैंने एक पहाड़ी तान छेड़ दी। बस फिर क्या था—वह लड़की हम पर····· ।"

लाला राम आसरे उन सबसे बूढ़ा और सबसे सीनियर क्लर्क था। उसे यह बात पसंद न आई कि ऐयाशी के मामले में अजीतसिंह यूँ बाज़ी ले जाए। वह किसी पहाड़ पर न गया था। फिर भी उसने अजीतसिंह की बात काटने के लिए, एक किस्सा घड़ते हुए कहा—

"एक बार हम कालका जी गए··· ।"

"हा···हा···हा" सरदार अजीतसिंह ने तुरन्त एक व्यंगात्मक क़हक़हे से काम लेते हुए कहा—"कालका को भी तुम पहाड़ समझते हो ? हा···हा···हा।"

और राम आसरे पर घड़ों पानी पड़ गया।

सरदार अजीतसिंह ने बात जारी रखते हुए कहा—"पहाड़ तो ऐसा होता है जैसे शिमला, मसूरी और कुल्लू। अजी साहब, सबसे ज्यादा ऐश तो हमने कुल्लू में किए। एक बार की बात है कि हम कुल्लू गए··· ।"

"दार जी साथ ही थे ?" लाला आसाराम ने जलकर पूछा। "नहीं थे !" अजीतसिंह ने बड़े शांत भाव से उत्तर दिया, "वे काश्मीर चले गए थे। और यह बहुत अच्छा हुआ, क्योंकि दार जी साथ में होते थे तो ऐयाशी छिपकर होती थी। और मैं इस बार खुलकर···अहँ···तुम समझते हो न ?"

"सब समझते हैं" लाला राम आसरे ने बड़ी गंभीरता से सिर हिलाकर कहा, जैसे किसी फाइल पर नोटिंग की हो।

"तो जनाब हम अकेले कुल्लू पहुँचे। कुल्लू को गिद्दी पहाड़ी पर लड़कियाँ बड़ी सुन्दर होती हैं। हाथ लगाने से मैली होती हैं। लेकिन बेचारी बड़ी ग़रीब होती हैं। उन्हें तम्बाकू का बड़ा चस्का होता है। मेरा एक मित्र रघुबरदयाल, जो आजकल डिप्टी कलक्टर है, उन दिनों मेरे साथ कालिज में पढ़ता था। उसने मुझे बताया था कि कुल्लू में लड़कियाँ सिग्रेट का एक पैकेट और रेशम का एक रूमाल देने से मिल जाती हैं।"

"बस ?" लाला रामलाल ने बड़े विस्मय से आँखें फाड़कर पूछा—"बस एक सिग्रेट का पैकिट और एक रेशमी रूमाल !"

"और क्या भई।" सरदार अजीतसिंह ने बड़ी दया-पूर्ण दृष्टि से इन क्लर्कों की ओर देखते हुए कहा—"मैं तो तुम्हें बता चुका हूँ कि वे लोग बहुत ग़रीब हैं। उनकी जेबें ख़ाली होती हैं और तुम जानती हो कि जिसकी जेब ख़ाली होती है, उसमें शक्ति नहीं होती।"

जवाब में रामलाल ने एक फीकी हँसी के साथ अपना सिर हिलाया, क्योंकि महीने के अन्तिम दिन थे, जब हर क्लर्क की

जेब खाली होती है। वह खाली जेब के दर्द को खूब समझता था। उसके पाँच बच्चे थे—एक से एक बढ़कर बदसूरत; पत्नी थी, जिसके वक्ष बच्चों को दूध पिलाते-पिलाते सूखी चिमगादड़ों की भाँति लटक आए थे। कई-कई महीने बीत जाते और रासलाल आँखें उठा कर आकाश की ओर न देखता। फूल की खुशबू उसके नथनों में न आती। सुगन्ध क्या होती है, सौन्दर्य क्या होता है, ऐयाशी किसे कहते हैं, उसे किसी चीज़ की अनुभूति न थी। सरदार अजीतसिंह की बातें सुनकर उसका मन इस प्रकार मचल उठा जैसे किसी बच्चे का मन तितली पकड़ने के लिए विह्वल हो उठता है।

"सो जनाब," सरदार अजीतसिंह ने अपनी कहानी जारी रखते हुए कहा "मैं जब कुल्लू गया तो अपने साथ बहुत से रेशमी रूमाल बाज़ार से ले गया। और गोल्ड फ्लेक सिग्रेटों के एक दर्जन पैकट···।"

"सरदार जो, क्या गज़ब करते हो?" लाला राम आसरे ने इधर-उधर देखकर कहा—"कोई सिक्ख सुन लेगा तो अभी कृपाण से सिर उड़ा देगा।"

"अजो, मैं कोई अपनी जेब में डालकर थोड़े ही ले गया था। नौकर से कह दिया था कि मोल लेकर अपने पास रख ले। मेरा नौकर तो गढ़वाली है, सिग्रेट खूब पीता है। बड़े ही काम का आदमी है। उसने मुझे गढ़वाल में बड़े ऐश कराए हैं। एक बार का ज़िक्र है, जब मैं गढ़वाल गया···।"

"मगर बात कुल्लू की हो रही थी।" रामलाल ने तुरन्त टोका, क्योंकि इस समय वह कुल्लू की सुन्दरियों की कल्पना

में लीन था।

"हाँ, हाँ, वह गढ़वाल का किस्सा फिर सुनाऊँगा, पहले यह कुल्लू का किस्सा पूरा करलूँ। सो जनाब, हम पहुँचे कुल्लू! वहाँ सैर को निकले। चलते-चलते कई मील पैदल चले गए। आखिरकार, क्या देखता हूँ कि एक सुन्दर-सी घाटी है, उसके किनारे एक सुन्दर सी चरागाह है। उस चरागाह में सुन्दर-सा भेड़ों का एक गल्ला है। और उस सुन्दर से गल्ले को संभाल हुए एक बड़ी ही सुन्दर, कोमलांगो लाल होंठों और कालो आँखों वाली एक सुन्दर-सी पहाड़ी लड़की है।"

"हाय", रामलाल के मुँह से अनायास निकल गया।

सरदार अजीतसिंह ने रामलाल की ओर तनिक ध्यान न दिया। अपना किस्सा सुनाते हुए बोला--

"मैंने उसे देखकर अपने नौकर को इशारा किया। मेरे गढ़वाली नौकर ने जेब से गोल्ड फ्लेक का एक पैकिट निकाला। लड़की की आँखों में एक चमक सी आ गई। नौकर ने पैकिट खोलकर एक सिग्रेट निकाला। लड़की भेड़ें छोड़कर हमारे पास आ गई। मैंने उस लड़की से पूछा—

"सिग्रेट पिएगी ?"

उसने लजाकर कहा--"हाँ।"

मैंने नौकर से कहा—"इसे सिग्रेट दे दो।"

मेरे नौकर ने उसे सिग्रेट दे दी।

मैंने कहा–"अरे बुद्धू, एक सिग्रेट नहीं, पूरा पैकिट दे दो।"

पूरा पैकिट लेकर वह लड़की ऐसी खुश हुई, ऐसी खुश हुई, ऐसी कृतज्ञतापूर्ण निगाहों से मेरी ओर देखा जैसे मैंने उसे

एक सिग्रेटों का पैकिट नहीं, जवाहरात का एक हार दे दिया हो।

वह हौले-हौले सिग्रेट पीने लगी। इतने में मैंने जेब से रेशमी रूमाल निकाला। लड़की तो जनाब, बस लपक कर बिलकुल मेरे पास आ गई। लेकिन मैं पीछे हट गया और उधर लौटने लगा, जिधर मैं ठहरा हुआ था। मैं रूमाल हवा में उड़ाता चला जा रहा था और लड़की जैसे चुम्बक के आकर्षण से खिंची, मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। मैं अन्त में अपने डाक-बंगले के निकट पहुँच गया। यहाँ पहुँचकर मैंने वह रेशमी रूमाल उस लड़की के हाथ में दे दिया और उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया।"

"हाय"—अतृप्त वासना की एक चीख अनायास रामलाल के होंटों से निकल गई।

× × ×

जिस दिन कैन्टीन में यह बातचीत हुई, रामलाल ने निश्चय कर लिया कि चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाए, वह इस साल पहाड़ पर अवश्य जायगा। अभी तो जनवरी का महीना था। जून तक वह इतनी रक़म अवश्य इकट्ठी कर लेगा कि पहाड़ पर जा सके। उसी शाम उसने घर आते ही अपनी पत्नी को भी बता दिया कि इस जून में वह माँजी, बच्चों और उसको लेकर पहाड़ पर ज़रूर जाएगा। उसकी पत्नी आशा के विपरीत यह सुनकर तनिक प्रसन्न न हुई। चूल्हे में कोयला झोंकते हुए बोली—

"आए हाए, पहाड़ पर कैसे जाएँगे ? कपड़े तो किसी के पास ढंग के नहीं हैं।"

"कपड़ों की क्या जरूरत है ?"

"माँ जी के घुटनों में कब से गठिया का दर्द हो रहा है। पैंसठ रुपये के इन्जैक्शन आते हैं। छः महीने से लाने को कह रहे हो, अभी तक तो लाए नहीं। पहाड़ कैसे जाओगे ?"

"चले जाएँगे। सुना है पहाड़ के पानी के चश्मों में नहाने से गठिया का दर्द आप दूर हो जाता है।"

"दो महीने बाद मुन्ने का मूंडन करना है। सौ रुपये तो उसी के लिए चाहियें।"

"अगले साल कर देंगे।"

"अगले साल कैसे करोगे ? देखते नहीं हो, उसके बाल कैसे झुंड से हो रहे हैं। आँखों में गिरते हैं।"

"गिरते हैं तो गिरने दो। हम इस साल पहाड़ जरूर जाएँगे।"

पहाड़ ! ऐयाशी ! रामलाल के मुँह से राल टपकी पड़ रही थी।

× × ×

कुछ दिन बाद जब रामलाल ने सरदार अजीतसिंह से इसका जिक्र किया, तो वह बहुत बिगड़ कर बोला—

"अरे पागल हुए हो ! पहाड़ जाओगे, और वह भी बाल-बच्चों को लेकर ? फिर क्या खाक ऐयाशी करोगे ? अरे पहाड़ पर जाना हो तो अकेले जाओ, वरना बीवी-बच्चों में ऐसे बँध जाओगे, जैसे दफ़्तर में बँधे रहते हो। इससे तो दिल्ली ही में भाड़ झोंको, तो ठीक रहेगा। एक बार मैं अपने बीवी-बच्चों को लेकर नैनीताल गया। दार जी भी साथ ही थे। वहां एक

दिन मल्ली ताल से तल्ली ताल आते हुए……"

लेकिन रामलाल ने उसकी मेज़ से उठते हुए कहा—

"सुपरिंटेंडेंट साहब बुलाते हैं, जा रहा हूँ। लौट कर पूरा किस्सा सुनूँगा।"

रामलाल चला गया। उसने उस दिन सरदार अजीतसिंह का किस्सा नहीं सुना। परन्तु अपने मन में निश्चय कर लिया कि वह अपने बाल-बच्चों को लेकर पहाड़ पर नहीं जाएगा, अकेला ही जाएगा।

× × ×

जून के महीने तक रामलाल ने घर वालों को धोखा दे दे कर तीन सौ रुपये इकट्ठे कर लिए। इस कारण न तो माँ के लिए गठिया के इन्जैक्शन आ सके और न मुन्ने का मूंडन संस्कार हुआ, न पत्नी के लिए साड़ियां आईं और न बच्चों के लिए जूते।

मगर रामलाल प्रसन्न था। वह पहाड़ पर तो जा सकेगा। अपने जीवन में पहली बार जी भरकर ऐयाशी कर सकेगा।

सरदार अजीतसिंह से सलाह करके उसने सोलन जाने का निर्णय किया। अजीतसिंह की राय में सोलन ऐयाशी के लिए सबसे सस्ती जगह थी। फिर यह जगह दिल्ली के पास भी थी। जाने से एक महीना पहले ब्लड प्रेशर का बहाना बनाया। घर वालों को ब्लड प्रशर के गंभीर परिणामों से इतना परिचित कराया और अपने प्राणों को इतने गंभीर संकट में बताया कि इसकी पत्नी डर के मारे रोने लगी।

वह अपने सोने के कड़े बेचकर उसे पहाड़ पर भेजने के

पक्ष में हो गई, परन्तु रामलाल ने बताया कि अभी कड़े बेचने की जरूरत नहीं। उसका एक दोस्त है—सरदार अजीतसिंह, उसका बाप पी० डब्लू० डी० में ठेकेदार है। वह उसे तीन सौ रुपये दे देगा, जिसे लेकर वह सोलन चला जाएगा। उसका जी तो बहुत चाहता था कि बीवी-बच्चों को साथ ले जाता, पर क्या करे रुपयों की तंगी है और उसे हाई ब्लड प्रेशर है; वरना—।"

माँ, पत्नी, बच्चे—सब उसकी बातों में आ गए और उसे तुरन्त सोलन भेजने को राजी हो गए।

× × ×

सोलन पहुँचकर वह दो रुपये रोज़ के एक घटिया होटल में ठहरा। उस दिन शाम हो चुकी थी और वह बहुत थका हुआ था। इसलिए नहा-धोकर और खाना खाकर वह बिस्तर पर पड़ गया और रात भर गहरी नींद सोता रहा।

दूसरे दिन उठकर उसने खूब सफाई से शेव बनाई, ग्रेफ्लैनल की एक पतलून निकाली, जो उसने घर वालों से चोरी-चोरी सिलवाई थी। ट्वीड का पुराना कोट निकाला, जिसे उसने ड्राइक्लीनर से रंगवा लिया था। और बारह आने वाली एक नई टाई लगाकर होटल से ऐयाशी के लिए निकला।

जाने से पहले उसने अपनी जेब में सिग्रेट के पैकिट भर लिए। एक रेशमी रूमाल अपने कोट की ऊपर वाली जेब से लगाया। दो रूमाल अपनी पतलून की जेबों में रखे। फिर एक सिग्रेट सुलगा कर छड़ी घुमाता हुआ बड़ी शान से रवाना हुआ।

उसे यह तो मालूम नहीं था कि ऐयाशी किस तरह होगी, हाँ, अजीतसिंह की बातें सुन-सुनकर उसने अपने मन में एक रूपरेखा सी अवश्य तैयार कर ली थी। उसके अनुसार वह चलता गया, चलता गया, यहाँ तक कि आबादी से बहुत दूर निकल गया।

एक सुन्दर श्यामल घाटी के बीच में उसे छोटा-सा पहाड़ी मकान दिखाई पड़ा, जिसके बाहर खेत में एक पहाड़ी बाला अपने गुलाबी मुखड़े पर काले केश लटकाए, कुछ काम कर रही थी। वह लड़की की ओर देखकर मुस्कराया।

एक अस्पष्ट, अनजान-सी मुस्कराहट लड़की के होठों पर भी दिखाई पड़ी। परन्तु वह उसी तरह खेत में काम करती रही।

रामलाल का मन डोलने लगा। मारे खुशी के उसके हाथ-पाँव फूल गए। ऐयाशी बिल्कुल सामने नज़र आ रही थी।

इतनी सुन्दर! इतनी समीप!

रामलाल ने जेब से सिग्रेट का एक पैकिट निकाला। लड़की ने उचटती निगाह से उसकी ओर देखा और फिर अपने काम में लग गई।

रामलाल सिग्रेट पीता रहा, परन्तु लड़की ने कोई ध्यान न दिया।

अन्त में बहुत सोच-सोचकर रामलाल ने अपनी जेब से एक रेशमी रूमाल निकाला और उसे बड़ी शान से हवा में लहराया—जैसे जादूगर करतब दिखाते समय हिलाते हैं।

रेशमी रूमाल हवा में लहराया, परन्तु कोई करतब नज़र

न आया।

लड़की रेशमी रूमाल को देखकर भी उसी तरह काम करती रही; बल्कि अब उसने अपना मुँह भी रामलाल की ओर से फेर लिया था।

रामलाल को बड़ा क्रोध आया। उसकी समझ में न आया कि क्या करे। बहुत सोचकर वह अपनी जगह से आगे बढ़ा और लड़की के बिल्कुल पास आकर बोला--

"क्या कर रही हो ?"

"देखते नहीं हो ?" लड़की ने पलट कर कहा, "गाजरें उखाड़ रही हूँ।"

लड़की ने मिट्टी से सने हुए हाथों से उसे एक गाजर दिखाई और फिर मुड़कर काम करने लगी।

रामलाल के माथे पर पसीना आ गया। उसने उसी रेशमी रूमाल से बड़ी घबराहट के साथ पसीना पोंछा और इधर-उधर हैरान होकर देखा--जैसे सरदार अजीतसिंह को खोज रहा हो।

ठीक उसी समय उसे एक पहाड़ी मकान के द्वार से एक हृष्ट-पुष्ट आदमी निकलता दिखाई दिया। परन्तु यह सरदार अजीतसिंह न था, एक पहाड़ी था।

पहाड़ी ने पास आकर रामलाल को झुककर सलाम किया। रामलाल की जान में जान आई।

पहाड़ी ने कहा--"क्या बात है बाबूजी ? रास्ता भूल गए हैं ?"

पहाड़ी की आवाज़ में बड़ी नम्रता और बड़ी मिठास थी। उसका पाजामा घुटनों पर से फटा हुआ था। उसकी कमीज़ में

दर्जनों थेगली लगी हुई थीं।

पहाड़ी के विनीत और विनम्र स्वर से साहस पाकर रामलाल ने कहा–

"यह लड़की मुझे पसंद है।"

रामलाल को बड़ा अचरज हुआ कि उसने कैसे यह बात कह डाली। परन्तु अब वास्तव में उसके तौर ऐसे थे जैसे पुराने मँजे हुए ऐयाशों के होते हैं।

पहाड़ी ने लड़की की ओर देखकर बहुत प्यार से कहा—"मुझे भी बहुत पसन्द है बाबूजी।"

रामलाल की समझ में कुछ न आया। वह चकरा गया।

पहाड़ी ने उसकी परेशानी दूर करते हुए कहा—"यह मेरी बहिन है।"

"ओह"—अब रामलाल की समझ में आया। उसने अपनी जेब से दस-दस से दो-तीन नोट निकाले और पहाड़ी से कहा–"मुंह माँगे दाम दूंगा—बस इस लड़की को मेरे पास ···।"

पहाड़ी धीरे से मुस्कराया।

बोला—"बाबूजी, आप कहाँ से आये हैं?"

पहाड़ी बहुत शिष्टता से बातें कर रहा था।

रामलाल ने कहा—"हम दिल्ली से आए हैं।"

"दिल्ली से", पहाड़ी ने झुककर कहा—"इतने बड़े शहर से?" ओ हो! जनाब, मैं भी एक बार दिल्ली गया था। रात को सड़क के किनारे पड़कर सोया और अगले दिन लौट आया। बहुत बड़ा शहर है बाबूजी। पर वहाँ पर तो किसी ने मुझे अपनी बहिन पेश नहीं की।"

"क्या बकते हो ?" रामलाल ने गरज कर कहा—"जानते हो किससे बातें कर रहे हो ?"

"आप बड़े पैसे वाले हैं । मैं गरीब पहाड़ी हूँ । यह मेरी बहिन है । पैसों की बड़ी तंगी रहती है—जेब सदा खाली रहती है। और खाली जेब में कोई ताकत नहीं होती । पैसे तो हमें हर समय चाहियें ।"

रामलाल ने समझा, पहाड़ी झुक गया और उसका काम बन गया । उसने बड़ी उदारता दिखाते हुए पहाड़ी से कहा—

"अच्छा ! तो हम तुम्हें बीस रुपये देंगे । तुम यह लड़की हमारे पास पहुँचा दो ।"

"लाइये बीस रुपये बाबू जी ।"

रामलाल बीस रुपये देने के लिए आगे बढ़ा । पहाड़ी ने एक साथ उसके मुँह पर एक ज़ोर का घूँसा मारा ।

× × ×

थोड़ी देर बाद जब रामलाल धरती से खून में लथपथ और तार-तार कपड़ों में उठा, तो उसे अनुभव हुआ कि पहाड़ बहुत बदल चुके हैं; और यद्यपि उनमें रहने वालों की जेबों में अभी तक कोई ताकत नहीं आई, लेकिन उनके घूँसों में बड़ी ताकत आ गई है ।

उजियारे के घाव

उजियारे के घाव

किनारा अकेला था। समुद्र सो रहा था। आकाश पर चाँद चमक रहा था। मैंने चाँद से कहा--

"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

"करो", चाँद ने मुस्करा कर कहा और चाँदनी दूर-दूर तक फैल गई। मैं चुप हो गया और रेत की ओर देखने लगा। समझ में नहीं आता था कि मैं कैसे शुरू करूँ। रेत किनारे पर चुपचाप लेटी पड़ी थी और चाँदनी के उपरांत उसका आँचल मटमैला और धब्बों से भरा हुआ था। कहीं पर वह चमक न थी, जो मुझे साहस प्रदान कर सकती, कुछ कहने पर उकसा सकती। मैंने दूर-दूर तक देखा, परन्तु रेत के आँखें नहीं होतीं। इसलिए वह मेरी दृष्टि की प्रार्थना न देख सकी। बस वह चुपचाप अपना ज्योतिहीन वक्ष खोले रेत पर पड़ी रही। रेत से परे छोटे-बड़े बे-डौल टीले थे, जिन पर कहीं-कहीं लम्बी और ब्लेड की धार की तरह पैने किनारों वाली घास उगी हुई थी। दूर से आने वाली लहर इन टीलों से टकराकर कभी की लौट चुकी थी और अपने पीछे केवल अपनी याद छोड़ गई थी--कुछ घोंघे और सीपियां। और घास के वक्ष से लिपटा हुआ फेन कह रहा था कि कभी कोई यहां आया था।

"चुप क्यों हो गए?" चांद ने पूछा।

"एक लड़की है"--मैंने कहा।

"लड़की?" चांद व्यंग्यपूर्वक मुस्कराया।

"हाँ, और मुझे उससे प्रेम हो गया है।"

"प्रेम!" चांद ने बड़े शांत स्वर में तारों से कहा, "मुझसे कभी कोई और बात नहीं करता। जब देखो वही प्रेम की बात। हजारों वर्षों से एक ही बात सुन रहा हूँ। जिसे देखो यही एक बात मुझसे करता है। क्यों? आखिर क्यों? मुझसे कोई दूसरी बात क्यों नहीं की जाती।"

इसलिए कि तुम चांद हो—शीतल और उज्ज्वल, मेरी प्रेयसी की भांति सुन्दर और लजीले। बताओ आज तक किसी ने सूरज से भी कहा है कि उसे किसी लड़की से प्रेम है? सच तो यह है कि वह इतना तेज चमकता है और उसकी किरणें इतनी प्रखर, इतनी प्रचण्ड हैं कि उसे देखकर छतरी का ख्याल आता है, लड़की का नहीं।"

चांद हँसा और दूर तक तारों की लड़ियां खिलती चली गईं और आकाश-गंगा का श्वेत बिल्लौरी झूला मेरे भावों के ज्वार-भाटे में डोलता नज़र आया।

चांद ने कहा—"तुम एक प्रेमी की तरह हठीले हो। तुम अवश्य बात करोगे। कहो, क्या कहते हो।"

मैंने कहा—"एक लड़की है।"

चांद ने कहा—"मैं सुन चुका हूँ। परन्तु कहां है वह लड़की? इस समय तुम्हारे साथ क्यों नहीं है?"

मैंने कहा—"इस किनारे से बहुत दूर एक शहर है। उस शहर में बहुत दूर एक गली है। उस गली में बहुत दूर एक घर है। उस घर में बहुत अन्दर को एक कमरा है।"

चांद ने कहा—"हां मैं रौशनदान में से झांक कर उसे देख रहा हूँ। वह पलंग पर बैठी तुम्हारी याद में आँसू बहा रही है। फिर ?"

मैंने कहा—"हम एक-दूसरे से नहीं मिल सकते। हे चांद, दुनिया हमें एक-दूसरे से मिलने नहीं देती।"

"क्यों ?"

"क्योंकि उसके माता-पिता और मेरे माता-पिता, उसका धर्म और मेरा धर्म, उसके रीति-रिवाज और मेरे रीति-रिवाज, सब एक-दूसरे के विरोधी हैं। इसलिए हम मिल नहीं सकते।"

चांद ने पूछा—"तुम्हारी दृष्टियां एक-दूसरे से मिली हैं ?"

"हाँ।"

और कभी तुम्हारे हाथों को उँगलियां उसके हाथों की उँगलियों से इस प्रकार मिली हैं कि पता न लगे कि कौन किसके हाथ की उँगली है ?"

"हां।"

"और क्या कभी तुम्हारे होठों ने उसके होठों को इस प्रकार चूमा है कि भावनाओं के सारे भेद और अहम् के सारे अहंकार उसकी गर्मी मे पिघल गए हों ?"

"हाँ।"

"और" चांद ने पूछा, "कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि जब उन होठों ने, जब उन हाथों ने, उन उँगलियों और उन दृष्टियों ने एक-दूसरे से बात की तो तुम उसका मतलब कुछ और समझे, वह कुछ और समझी ?"

"नहीं।"

"कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि जब तुमने उसके बालों में गुलाब का फूल लगाया तो उसके नथनों में कोई और सुगन्ध आई और तुम्हारे नथनों में कोई और ?"

"नहीं।"

"तो बस" चाँद ने निर्णयात्मक स्वर में कहा, "फिर वही एक बात, वही एक सुगन्ध सत्य है, शेष सब मिथ्या है।"

"फिर सत्य पर मिथ्या की विजय क्यों होती है ? फिर हम एक-दूसरे से क्यों नहीं मिल सकते ? फिर हम क्यों अलग-अलग नौकाओं में बहे जा रहे हैं ? इतना तो बता दो मुझे ऐ चांद !"

"देखो," चांद ने कहा "प्रेम एक भावना ही नहीं है। वह एक क्रिया भी है। वह मिलन ही नहीं संघर्ष भी है। वह एक विचार ही नहीं एक युद्ध भी है—नये और पुराने के बीच, अच्छे और बुरे के बीच, सुन्दर और असुन्दर के बीच। इस युद्ध में कभी मिथ्या की भी विजय होती है। कभी जीवन के स्थान पर क़बरें भी बनी हैं। परन्तु यह भी तो देखो कि प्रेम कहां से कहां तक जा पहुँचा है। कभी पुरुष अपनी प्रेमिका को बालों से घसीट कर गुफा में ले जाता था; परन्तु आज उसकी अलकों के गीत गाता है। कभी स्त्री पांच विवाह करती थी और पुरुष पांच सौ। परन्तु आज देखो अँधेरा कितना घट गया है। कितने करोड़ प्राणियों के जीवन को मेहराबें प्रेम की ज्योति से देदीप्यमान हैं।"

"मैं जानता हूँ," मैंने कहा।

"और वह भी जानती है ?" चांद ने कहा।

"हाँ।"

"फिर भी तुम दोनों नहीं मिल सकते ?" चांद ने बड़ी उदासी से पूछा।

मैंने निराश हो सिर झुका दिया और धीरे से कहा—

"वह कहती है कि···"

चांद ने मेरी बात काटकर कहा—"वह क्या कहती है, यह तुम न कहो, उसे कहने दो मुझसे—उस लड़की को मेरे सामने लाओ।"

इतना कहकर चांद ने बादलों को चादर ओढ़ ली और आकाश की नीली मेहराब तले सो गया।

मैं किनारे से निराश, हताश लौट आया।

इसके बाद कितनी ही चांदनी रातें आईं; हवाएँ कितनी ही दूर से अजनबी फूलों की खुशबुएँ भरकर लाईं; लहरें समुद्र की श्वेत सीपियां और मूँगों के नगीने लाईं। परन्तु वह जिसके लिए धरती और आकाश और समुद्र ने इस किनारे को इतना सुन्दर, मनोहर और आकर्षक बनाया था, वह न आई। मांझियों ने अपनी नौकाओं के पाल खोल दिये और दूर-दूर तक आवाज़ दी और पानी की गहराइयों में तैरने वाली मछलियों ने अपनी हैरान-हैरान आंखों से चारों ओर घूम-घूमकर देखा। हवा नारियल के वृक्षों के छतनारों में बैठी किसी के पगों की आहट की प्रतीक्षा करती रही। और समुद्र की विकल उँगलियां किनारे के तारों को छूकर एक करुण राग पैदा करती रहीं। परन्तु वह न आई। मैं बाट देखता रहा, चांद बाट देखता रहा, समुद्र धीरे-धीरे सुबकियां भरता रहा। परन्तु वह न आई।

और जब वह आई तो उस रात कोई चांद न था, कोई किनारा न था, कोई समुद्र न था—बस एक अँधेरा कमरा था। एक गद्देदार निद्रा की भांति मादक सोफ़ा था। फूलदानों में फूल नतमस्तक थे। और रेडियोग्राम से संगीत की कातर ध्वनियां सुनाई पड़ रही थीं। और वह मेरे पास बैठकर कह रही थी—

"मेरी मां कहती है, यदि मैंने तुमसे ब्याह कर लिया तो वह ज़हर खा लेगी।"

मैंने कहा—"ओह, मेरे पिता कहते हैं कि उनके जीते जी यह शादी कदापि नहीं हो सकती; और तुम जानती हो मेरे पिता कितने बड़े आदमी हैं। स्वर्णा! वह इतने बड़े आदमी हैं कि इस संसार में उन्हें केवल अख़बार की सुर्ख़ियों से डर लगता है।"

स्वर्णा बोली—"और मेरा भाई कहता है कि वह तुम्हें पिस्तौल से मार डालेगा।"

मैंने डर कर कहा—"अच्छा तो अब क्या होगा?"

वह बोली—"अगले मास वे मेरा विवाह कर रहे हैं।"

इसके बाद वह फूट-फूटकर रोने लगी। फिर मैं भी रोने लगा। फिर हम दोनों मिलकर रोने लगे। और जब खूब रो चुके तो हम दोनों ने निर्णय किया कि जान पर खेल जायंगे, पर अपने प्रेम पर आंच न आने देंगे।

"मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती"—स्वर्णा मेरे गले में बाहें डालकर बोली।

"और मैं तुम्हारे बिना", मेरे होठों ने उसके होठों से कहा।

"हाय" स्वर्णा एक ठंडी सांस भर कर बोली—"यह संसार

कितना निर्मम है। हमें जीने भी नहीं देता ? प्यार करने भी नहीं देता। हम उनसे क्या मांगते हैं ? क्या चाहते हैं ?"

"तो आओ स्वर्णा", मैंने तनिक साहस बटोरकर कहा, "आओ अपने समाज से विद्रोह करें।"

"हैं ! विद्रोह ? विद्रोह का नाम न लो" स्वर्णा बोली—"मुझे बदनामी से बड़ा डर लगता है।"

मैं चुप हो गया। सन्नाटा गहरा ही गहरा होता गया। स्वर्णा की सिसकियाँ धीमी पड़ती गयीं। अन्त में उसने अपने आँसू पोंछ डाले और अपने होठों की लिपस्टिक ठीक करते हुए बोली—

"मेरे विचार में हम दोनों को मर जाना चाहिए।"

"हाँ, इन परिस्थितियों में यही सबसे ठीक मालूम देता है"—मैंने स्वर्णा को धीरे से गले लगाते हुए कहा—"अगर हम जी नहीं सकते तो मर जाएँ। मगर मरेंगे कैसे ?"

"वाह !" स्वर्णा बोली, "यह तो बहुत आसान है। कहीं से दो रस्सियां ले आएँगे और गले में फाँसी का फन्दा डालकर मर जायेंगे।"

"तरकीब तो अच्छी है" मैंने सिर हिलाकर कहा "परन्तु मान लो कि फन्दा खिंचते समय रस्सी टूट गई ? या फन्दा ठीक से न लगा। एक रह गया, दूसरा मर गया तो फिर क्या होगा ?"

सोच-विचार कर हमने यह तरकीब रद्द कर दी।

"अब क्या होगा ?" स्वर्णा की बड़ी-बड़ी हैरान पुतलियाँ घबराहट में और भी फैल गईं, "जल्दी से कोई और तरकीब

बताओ।"

मैंने कहा—बाज़ार से कहीं से ज़हर खरीद कर ले आएँगे।"

"नहीं, नहीं !" स्वर्णा झटपट बोल उठी—"ज़हर खाने से सूरत बिगड़ जाती है। मेरी एक सहेली ने प्रेम में ज़हर खा लिया था; उसकी सूरत मुझे अब तक याद है।"

स्वर्णा के सारे शरीर में ग्लानि और घृणा की एक झुर-झुरी-सी दौड़ गई।

और अधिक वाद-विवाद किए बिना ही यह तरकीब भी रद्द कर दी गई।

फिर मरने की और बहुत-सी तरकीबें सोची गईं, मगर कोई स्वर्णा को पसन्द नहीं आई, और कोई मुझे।

स्वर्णा बड़े क्रोध में आकर बोली—"अजीब मुसीबत है। हम समझते थे कि जीना कठिन है, अब पता लगा कि मरना उससे भी कठिन है।"

अन्त में सोचते-सोचते एक तरकीब मेरे मस्तिष्क में आई और इस तरकीब के सूझते ही मैं हर्ष से नाच उठा। मैंने कहा—

"यह तरकीब सबसे अच्छी है। तुम्हारे विवाह के एक दिन पूर्व हम दोनों समुद्र के किनारे जायेंगे और बस डूब कर मर जायेंगे।

"डूबने में कोई तकलीफ़ तो नहीं होती ?" स्वर्णा ने तनिक झिझक कर पूछा।

"ओ, तनिक नहीं" मैंने ऐसे विश्वास से कहा, जैसे कई बार डूब चुका हूँ। सुनो, पहले पानी टखनों तक आएगा; फिर घुटनों तक आएगा; फिर कमर तक आएगा; फिर गर्दन तक,

फिर हौले-हौले हम एक-दूसरे का हाथ थामे, एक-दूसरे की आँखों में आँखें डाले समुद्र की लहरों में डूब जाएँगे और फिर मानो पानी के नीचे-नीचे हमारे शरीर, एक-दूसरे से लिपटे हुए, मछलियों की तरह तैरते हुए मूंगों के रंगीन उद्यानों में स्टार फिश की भाँति टहलते हुए समुद्र की अथाह नीलिमा में खो जाएँगे।"

"हाय, कितनी सुन्दर होगी यह मौत"—स्वर्णा ने प्रसन्नता से मेरा हाथ दबाया। "मेरा तो अभी से मरने को जी चाह रहा है।"

मैंने कहा—"अभी नहीं, यह तो तुम्हारी शादी से एक दिन पूर्व होगा। उस दिन आकाश में चांद भी होगा।"

"चांद से हमें क्या मतलब ?" स्वर्णा मेरी बात न समझ कर बोली।

मैंने कहा—"कुछ नहीं। बस चांद ने तुम्हें बुलाया है।" फिर भी स्वर्णा मेरी बात नहीं समझी। वह केवल मृत्यु का बुलावा सुन रही थी, चांद का नहीं।

अन्त में वह दिन भी आ गया, जब हम दोनों को मरना था। उस दिन स्वर्णा ने सुहाग का जोड़ा पहना था और माथे पर बिन्दी लगाई थी। आज वह दुल्हिन बनके मेरे साथ मरने आई थी। आकाश पर चांद था और धरती पर किनारे-किनारे हम दोनों डूबने के लिए जा रहे थे। चांद ने हमें बहुत रोका।

चांद ने कहा—"देखो स्वर्णा, चांदनी कितनी सुन्दर है! यह मरने के लिए नहीं, जीने के लिए और जी कर प्रेम करने के लिए है।"

स्वर्णा बोली—"पर मैं क्या करूँ, मैं बिल्कुल विवश हूँ। तुम मेरी विवशताएँ नहीं समझते चांद। अगर मैंने इनसे शादी कर ली तो मेरी माँ ज़हर खा लेगी और फिर मैं जीवन भर अपने को क्षमा न कर सकूँगी।"

"कौन ज़हर खाता है? और किसने ज़हर खाया है—लैला के बाप ने, मजनूं की माँ ने, जूलियट के अब्बा ने या रोमियो के भाई ने? कोई ज़हर नहीं खाता और कोई किसी को प्रेम करने से रोकने के लिए नहीं मरता। केवल प्रेम करने वाले मर जाते हैं। कहीं पर कोई ज़हर खा लेता है और कोई रेल की पटरी पर सिर रख देता है। कहीं पर कोई घड़ा चिनाव में गिरकर टूट जाता है और किसी का सुन्दर जीवन बुलबुले की भाँति फूट जाता है। केवल प्रेम करने वाले मरते हैं, अत्याचारी सदैव जीवित रहते हैं।"

"परन्तु हमारे कारण उन सब लोगों को दुःख जो होगा"—स्वर्णा धीरे से बोली।

"दुःख के बिना कोई प्रेम नहीं पनपता" चांद ने कहा, "क्योंकि प्रेम सृजन है और कोंपल को धरती की छाती से बाहर आना है तो धरती को अपनी जगह से हटना होगा। अगर कमल को फूल बनना है तो उसे पानी की लहरों को चीर कर पानी के तल से ऊपर उठना पड़ेगा। इसके बिना कुछ नहीं हो सकता। यह तो प्रसव-पीड़ा है। इतना दुःख तो स्वर्णा हर उत्पत्ति में होता है।"

स्वर्णा ने जल्दी से मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—

"इस पगले चांद की बातें न सुनो, आओ, जल्दी से यहाँ

से चलें।"

चांद फिर भी कहता रहा। जब हम किनारे से समुद्र की ओर चले तो भी वह कह रहा था। जब हम समुद्र की लहरों में उतरे तो भी वह कह रहा था। फिर एकाएक चांद चुप हो गया और समुद्र की लहरों का शोर बढ़ गया। पानी पहले टखनों तक आया, फिर घुटनों तक, फिर कमर तक, फिर एका-एक किसी ने जोर की चीख मारी। हमने मुड़कर अपने दाईं ओर देखा, जिधर से आवाज़ सुनाई दी थी। देखा कि हम से बहुत आगे एक आदमी समुद्र में डूब रहा है और हाथ-पाँव मारते हुए ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा है—"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ।"

मैंने तुरन्त स्वर्णा का हाथ छोड़ दिया और तैरता हुआ समुद्र में आगे बढ़ गया और थोड़ी देर में उस डूबते हुए आदमी को समुद्र से निकाल लाया।

वह आदमी बेहोश हो चुका था। उसके पीले चेहरे पर दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उसकी आँखें बंद थीं और सांस धीमे-धीमे चल रहा था। उसे देखकर स्वर्णा की आँखों में आँसू आ गए। जल्दी से मेरा हाथ पकड़कर बोली—"देखा, यह भी कोई हमारी तरह मालूम होता है।" "बेचारा—कोई निराश प्रेमी", मैंने भावनाओं से भरपूर कंठ से कहा—"देखा स्वर्णा, यह है प्रेम—सच्चा प्रेम।"

सहसा उस आदमी ने आँखें खोल दीं और इधर-उधर देखकर कहा—

"रोटी—कहीं से रोटी का एक टुकड़ा ला दो। छः दिन

से भूखा हूँ।"

हम दोनों सन्नाटे में आ गए—हम दोनों जो सुखी थे, सम्पन्न थे, और प्रेम करते थे और प्रेम के लिए मरते थे। हमें मालूम न था कि कोई रोटी के टुकड़े के लिए भी मर सकता है।

सहसा स्वर्णा ने मेरी ओर और मैंने स्वर्णा की ओर देखा और एक क्षण में हम दोनों की समझ में आ गया कि इस प्रकार मरना बेकार है, निरर्थक है, ग़लत है। इसके लिए कुछ और करना होगा। मरने से भी आगे जाना होगा।"

× × ×

आज फिर चांदनी रात है और मैं चांद से कह रहा हूँ—"स्वर्णा का विवाह हो चुका है और मेरा भी। स्वर्णा का एक घर है, उसके बच्चे हैं, उसका एक परिवार है। मेरा भी एक घर है, बच्चे हैं और परिवार है। हम दोनों एक-दूसरे से दूर अलग-अलग स्थानों में रहते हैं और एक-दूसरे से कभी नहीं मिलते। परन्तु शायद बहुत-सी जगहों पर और बहुत से क्षणों में अब भी हम मिलते रहते हैं। जो काम मैं करता हूँ, वह काम वह करती है। जो बात मैं सोचता हूँ, वह बात वह सोचती है, इसलिए कहीं पर भूख कम हुई है, कहीं पर अत्याचार कम हुआ है और कहीं पर प्रेम कुछ आगे बढ़ा है और संसार पहले से कुछ अच्छा हुआ है—मेरे कारण और स्वर्णा के कारण और हमारी तरह सोचने वाले और कार्य करने वाले लाखों-करोड़ों अन्य इन्सानों के कारण। यह संसार पहले से कुछ अच्छा हुआ है, कुछ अच्छा हो रहा है, यही क्या कम है!"

"तो तुम खुश हो?" चांद ने मुस्करा कर कहा।

"हाँ।"

"और स्वर्णा ?"

"वह भी खुश है।"

चांद फिर बड़े अनोखे ढंग से मुस्कराया। मैं उसकी मुस्कराहट को तनिक न समझ पाया। सहसा चांद ने पूछा—"तुम्हें स्वर्णा कभी याद आती है ?"

मैंने कहा—"हाँ। कभी-कभी किसी बादलों वाली शाम को जब वर्षा बरस के थम जाती है, और आकाश खुल जाता है और अस्ताचल की रग से उसका रुधिर बूँद-बूँद करके टपकने लगता है; जब रात एक नीले शोले की तरह भड़क उठती है और समुद्र के किनारे कोई भटकी हुई अबाबील अपना घर खोजते हुए व्योम में बड़े-बड़े चक्कर लगाने लगती है तो सहसा मैं अपने को अकेला, नितान्त अकेला पाता हूँ। मैं विकल, विह्वल हो अपने घर से निकल आता हूँ और जीवन के सुनसान वीरान तट पर पागलों की भांति दौड़ते हुए स्वर्णा की खोज करता हूँ, जो मुझे नहीं मिली, जो मुझे नहीं मिलेगी।"

चांद धीरे से मुस्कराया। मैंने कहा—"तुम मुस्कराते हो, हालांकि सारा दोष तुम्हारा है।"

"मेरा ?" चांद ने आश्चर्य से कहा, "वह कैसे ?"

"वह ऐसे कि तुमने स्वर्णा को समझाया नहीं।"

तुम प्रेम के बारे में सब कुछ जानते हो; तुमने सहस्रों शताब्दियों से प्रेम करने वालों से बातें की हैं; तुमने दांते का दुख देखा है और जूलियट की आहें सुनी हैं। तुमने शकुन्तला के आँसू पौंछे हैं और हीर के बैन सुने हैं। तुम सोहनी को चिनाब

के पानियों में ले गये और सावित्री को मृत्युलोक तक काल के पीछे-पीछे ले गए। तुम अगर चाहते तो स्वर्णा को समझा सकते थे और तुम्हारे अनुभव की गहराई उसे शक्ति और साहस प्रदान कर सकती थी। परन्तु तुम ऐसा क्यों करते? तुम्हारा मन तो काला है—तभी तुम्हारे उज्ज्वल शरीर पर इतने बड़े-बड़े स्याह धब्बे हैं।"

चांद ने एक उदास मुस्कराहट से कहा—"मैं कोई चांद नहीं हूँ। मैं स्वयं प्रेम हूँ। यह मेरी छाती पर जो दाग़ देखते हो, ये सब तुमने दिए हैं। जब-जब और जहाँ-जहाँ कायरता के कारण किसी का प्रेम प्यासा रह कर मुरझा जाता है, मेरी छाती पर उसका घाव बन जाता है। अपनी कायरता का दोष मुझ पर न थोपो। अन्धकार के ये अन्धे घाव तुम्हारे दिए हुए हैं।"

"परन्तु" मैंने कुछ कहना चाहा।

लेकिन चांद ने टोककर कहा—"अब चले जाओ। मैंने सब कुछ तुम्हें बता दिया है। मेरे घावों को और अधिक न कुरेदो।"

हड़ताल तोड़

हड़ताल तोड़

माई डीयर बॉस,

मैं अभी वरली चाल नम्बर सत्रह से बुन्दू को मार कर आ रहा हूँ और यहाँ तुम्हारी मिल की तीसरी मंजिल से मैनेजर के कमरे में बैठकर यह पत्र लिख रहा हूँ।

यहाँ पूर्ण निस्तब्धता है। मैनेजर भी नहीं है। पहरेदारों के सिवा मिल में कोई नहीं है। मैं उठकर मैनेजर के कमरे की खिड़की खोलकर नीचे बाजार में झाँकता हूँ, मगर नीचे बाजार में कोई नहीं है। मिल का बाजार भी बन्द है। चारों ओर सन्नाटा है। वरली चाल नं० सत्रह में ट्रेड यूनियन लीडर बुन्दू की लाश पड़ी है। उसका खून मेरे हाथों पर है, यद्यपि उसकी लाश मुझसे बहुत दूर है।

अब के बुन्दू को क़त्ल करने में मुझे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ऐसी कठिनाइयाँ तो सावंत को क़त्ल करने में भी सामने न आई थीं। यह पत्र तुम्हें इसलिए लिख रहा हूँ कि तुम आने वाली कठिनाइयों और परिस्थितियों का अनुमान लगा सको और उनके बारे में विचार कर सको। सामंत के क़त्ल के समय मेरे गैंग में साठ आदमी थे, जो मज़दूरों की हर चाल और मिल के हर डिपार्टमेंट में फैले हुए थे। याद है तुम्हें जब गांधी जी की गिरफ्तारी के समय मिल

में हड़ताल हुई थी। तब तुम कितने नाराज़ हुए थे। उस समय तुम कांग्रेस में नहीं थे। उस समय तुम्हारे सिर पर गांधी टोपी न आई थी। यह तो बहुत बाद की बात है, परन्तु उन दिनों भी तुम उस हड़ताल से आज की हड़ताल की तरह नाखुश थे और तुमने मुझसे मजदूरों के लीडरों की सूची माँगी थी और मैंने दो ही दिनों में तैयार करके तुम्हें दे दी थी। परन्तु उस समय तुम चुप हो गए थे। हाँ, इस घटना के छः महीने बाद जब हमारी मिल के मजदूरों ने महंगाई के प्रश्न पर फिर हड़ताल की थी तो तुमने सबसे पहले सावंत को क़त्ल करने का आदेश दिया, जिसका नाम मेरी सूची में सबसे ऊपर था। हैरान हूँ कि तुम सूचियों को कितना संभाल कर रखते हो। इतना व्यस्त होने के उपरान्त तुम्हारे मस्तिष्क में वह सूची ज्यों की त्यों सुरक्षित रही—यद्यपि अब तक उस सूची में से कई नाम काटे जा चुके हैं—सावंत, अमजद, गुरदयाल, रंगाचारी, रक़ीबू और डीकास्टा। एक-एक करके ये सब नाम काटे जा चुके हैं। कहीं किसी अन्धेरी रात में, कहीं किसी गली के नुक्कड़ पर, कहीं किसी चाल के कोने में एक छुरा चमका, लपक कर किसी की पीठ में उतरा और एक नाम तुम्हारी सूची से कट गया। सूची तुम्हारी थी, हाथ मेरे थे, गला मज़दूर का था।

पिछले पन्द्रह वर्षों में किस लग्न और किस परिश्रम से मैंने और मेरे गैंग ने तुम्हारी सेवा की है, उसके साक्षी केवल ये पांच क़त्ल ही नहीं हैं, सन् ३८, सन् ४०, सन् ४२, सन् ४४ की वे हड़तालें भी हैं, जो मैंने और मेरे गैंग के लोगों ने तुम्हारे लिए तोड़ी हैं। इसकी साक्षी वे मिलें भी हैं जो इन हड़तालों

को तोड़कर तुमने खड़ी की हैं। तुमने मुझे नहीं बताया लेकिन मैं जानता हूँ कि अब मिल के बाहर का सारा बाज़ार तुम्हारा है; मतुंगा में धान की जो नई मिल लग रही है, वह तुम्हारी है। अहमदाबाद की जश्न वीविंग मिल के अधिकतर शेयर तुमने खरीद लिए हैं। पिछले पन्द्रह वर्षों से किसी न किसी प्रकार तुम मिल के हिसाब में घाटा दिखाते रहे; मजदूरों में फूट डलवा कर, हड़तालें तुड़वाते रहे; और किसी न किसी बहाने उनकी पगार बढ़ाने से इन्कार करते रहे; और दूसरी ओर छिपकर नई मिलें लगाते रहे और पुरानी मिलों के शेयर खरीदते रहे, और बिल्डिगें और बाजार खड़े करते रहे। माई डीयर बॉस, आज तुम एक बहुत बड़े आदमी हो। तभी तो हमारे वाणिज्य-मंत्री, दि ग्रेट मरकैंटाइल एसोसिएशन के वार्षिक जल्से में भाषण देते हुए आपकी प्रशंसा कर रहे थे। तुमने यह पद, यह स्थान, यह सम्मान अपने परिश्रम, पराक्रम और विवेक द्वारा प्राप्त किया है। उस दिन सब लोग बड़े हर्ष से तुम्हारी ओर देखकर ताली पीट रहे थे और मैं अपना सिर पीट रहा था।

माई डीयर बॉस! क्या हमारे वाणिज्य-मंत्री सचमुच नहीं जानते कि तुम्हारी प्रगति के लिए कितने मजदूरों की गरदनें मारी गईं; कितनी हड़तालें तोड़ी गईं। पिछले पन्द्रह वर्षों में कितने लाख फ़ाक़ों की अलग-अलग पोटलियाँ बाँधकर तुम्हारी तिजोरी को भरा गया है। माई डीयर बॉस, क्या सचमुच हमारे वाणिज्य-मंत्री बिल्कुल नहीं जानते या तुमने उनके मुँह में अपनी ज़बान रख दी है, जिस प्रकार तुम

अपना छुरा मेरे हाथ में थमा देते हो ? वास्तव में रहस्य क्या है ? सचसच बता दो मेरे बॉस, तुम्हारे और मेरे बीच तो कोई पर्दा नहीं होना चाहिए ।

शायद तुम समझते हो कि अब मैं बदल गया हूँ या बदल रहा हूँ । परन्तु बॉस, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारा वही पुराना बीस वर्ष का सेवक हूँ जिसे तुम दादर के खुफ़िया शराबख़ाने और जूएख़ाने से निकालकर लाए थे। उस दिन अगर तुमने मुझे न बचाया होता तो मैं उस बूढ़े सेठ को छुरा मारने के अपराध में कब का फाँसी पा गया होता । तुमने मेरी जान बचाई है, मैं तुम्हारा वही नमकख़ोर, आज्ञाकारी सेवक रहूँगा ।

यह सच है कि तुम अब मुकतलाल पार्क में रहते हो और मैं उसी पुरानी चाल में । यह सच है कि तुम्हारा बैंक बैलेंस बढ़ रहा है और मेरी पगार वही है । परन्तु मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है । मैं दो समय पेट भरकर खाना खाता हूँ और अच्छे से अच्छा कपड़ा पहन सकता हूँ, यद्यपि मजदूरों के डर से नहीं पहनता कि कहीं वह मुझे गद्दार न समझ लें । मैं जब चाहूँ तुम्हारे सिनेमा में फ्री पास से सिनेमा देख सकता हूँ । रात को तुम मुझे शराब की एक बोतल और एक औरत का शरीर भी दिला देते हो। जब कभी मेरा मन जूआ खेलने को करता है, मैं किसी भी जूएख़ाने में जाकर तुम्हारे अकाउण्ट से जूआ खेल आता हूँ। अगर जीत जाता हूँ तो रुपया अपनी जेब में डाल लेता हूँ और हार जाऊँ तो तुम्हारे अकाउण्ट में लिखा देता हूँ । अब तुम्हारा और मेरा तो खून का रिश्ता है ना ? अब हम एक-दूसरे से कैसे जुदा हो सकते हैं !

अभी-अभी मैं बुन्दू को क़त्ल करके आ रहा हूँ जिसके नेतृत्व में बीस दिन से हमारी मिल के मज़दूरों ने हड़ताल कर रखी है। अब तो हम एक साथ जियेंगे और एक साथ मरेंगे।

परन्तु जो बात मैं तुमसे कहना चाहता था, वह बात एक अर्से से मेरे दिमाग़ में धीरे-धीरे आ रही थी, परन्तु जो अब बिल्कुल पक्की और स्पष्ट होकर मेरे मस्तिष्क पर छा गई है, वह बड़ी ही खतरनाक बात है सेठ। यह तो नहीं है कि मैं बुन्दू को क़त्ल करने में असफल रहा। कत्ल तो वह हो गया। उसकी लाश वरली चाल नम्बर सत्रह में पड़ी है। तुम अभी जाकर देख सकते हो।

परन्तु चिन्ता और चौंकने की बात यह है कि अब की यह क़त्ल मैंने अकेले ही ने किया। आज मेरे साथ मेरा कोई सहायक न था। साठ के गैंग में से मेरे सहायक घटते-घटते बाईस रह गए, फिर पन्द्रह रह गए, फिर दस रह गए। और जब यह हड़ताल शुरू हुई तो केवल सात रह गए थे। कुछ दिनों बाद अशफ़ाक़ और रामदयाल रह गए और जब मैंने उनसे बुन्दू के क़त्ल की चर्चा की तो ऊपर से उन्होंने हामी भर ली, परन्तु उनकी आँखों के सहमेपन से स्पष्ट था कि वे उसे कत्ल नहीं करेंगे। दूसरे दिन वे मुझे मिले भी नहीं। विवश हो मुझे अकेले ही बुन्दू को क़त्ल करना पड़ा। बुन्दू बड़ा मूर्ख था। अकेला ही माहिम की ओर एक बीमार हड़ताली को देखने जा रहा था कि मुझे अवसर मिल गया। अब वह ट्रेड यूनियन के किसी जलसे में किसी मज़दूर को तुम्हारे विरुद्ध न भड़का सकेगा।

यहाँ तक तो ठीक है। परन्तु इसके आगे सब कुछ ग़लत है। मुझे मालूम है कि पहले जब कभी मज़दूरों के लीडर को ख़त्म कर दिया जाता था तो उसके दूसरे या तीसरे दिन हड़ताल भी ख़त्म हो जाती थी। परन्तु अब ऐसा नहीं होगा। माई डीयर बॉस, बुन्दू खत्म हो गया मगर हड़ताल खत्म नहीं होगी। मैंने बुन्दू की गरदन तोड़ दी, पर इस हड़ताल को नहीं तोड़ सकता। अबके मेरे और तुम्हारे हथकंडे भी मिलकर इस हड़ताल को नहीं तोड़ सकते।

तुम कहोगे कि मैं वैसे ही निराश हो रहा हूँ। यह बात नहीं है मेरे प्यारे बॉस, यह बात यूँ नहीं है। तुम जानते हो मैं तुम से कोई ग़लत बात नहीं कहता। मैंने बीस वर्ष से मज़दूरों में गद्दारी के बीज बोने और फूट डालने का काम किया है। मैं उनकी सब कमज़ोरियों को जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ अबके वे इस हड़ताल को न तोड़ेंगे। पिछले सात दिनों में मैंने एक नए मज़दूर का चेहरा देखा है। वह बात कम करता है। नारे कम लगाता है। उसकी आँखों में आँसू की जगह एक असाधारण संकल्प चमकता है।

तुम कहोगे मैं कमज़ोर हो गया हूँ, मेरी आँखें मुझे धोखा दे रही हैं। ख़ून के ख़्याल ने मुझे कायर बना डाला है। ऐसा नहीं है बॉस। आज मेरा कोई साथी, सहायक नहीं है। तुम्हारी मिल में आज मैं अकेला हूँ—बिल्कुल अकेला। एक-एक करके मेरे साथी मुझसे गद्दारी करके मजदूरों से जा मिले हैं। उस दिन मैंने सोलह नम्बर की चाल में ढौंडू मिस्त्री के घर एक रुपया देना चाहा पर उसकी पत्नी सुरनो ने उस रुपये को उठाकर

ज़ोर से पिछवाड़े फेंक दिया। मुझे मालूम था कि रात से उसके घर में फ़ाक़ा था। उसके बच्चे ने कुछ नहीं खाया था, वह और ढौंडू दोनों भूखे थे। इस पर भी उन्होंने मेरे रुपये को उठाकर फेंक दिया—अतीत की ओर उछाल दिया। मेरे स्वामी, मेरे सेठ, मेरे दाता, आज मैं उठाकर पिछवाड़े फेंक दिया गया हूँ। आज एक नया मजदूर जाग रहा है।

चाल में ढौंडू का बच्चा पेंसिल हाथ में लिए एक खिड़की का चित्र बना रहा है। मैं पूछता हूँ—'क्या बना रहा है?' बच्चा उत्तर देता है—'खिड़की।' मैं पूछता हूँ—'यह खिड़की तो है, पर इसका घर कहाँ है?' बच्चा बड़ी गंभीरता से उत्तर देता है—'घर भी बन जाएगा।'

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व मज़दूर ने केवल एक खिड़की बनाई थी। उस समय उसके पास कोई घर न था, केवल एक खिड़की थी जिसमें से झांककर वह भविष्य को देखता था। इन पन्द्रह वर्षों में मज़दूर ने अपने परिश्रम से, अपने संघर्ष से, अपने बलिदान से एक छोटा सा मज़बूत घर बना लिया है—अपनी यूनियन। और अब मज़दूर इस घर में मोर्चे बनाकर बैठ गया है। अब मैं उसकी हड़ताल को नहीं तोड़ सकता। सन् ४४ की हड़ताल में खतरनाक मजदूरों की जो सूची मैंने तुम्हें दी थी, वह बहुत संक्षिप्त थी। आज अगर यह सूची बनाने बैठूँ तो बनाते-बनाते ख़त्म न हो और मारते-मारते मेरे हाथ थक जाएं पर मज़दूर ख़त्म न हों।

यह सही है कि इस अर्से में तुम्हारी दौलत बढ़ी है, मगर मज़दूर इससे अधिक बढ़े हैं। तुम्हारी पूंजी बढ़ी है, उनकी

शक्ति बढ़ी है। जब तुम एक नई मिल बनाते हो तो तुम्हारे लिए केवल एक नया अकाउण्ट खुलता है, परन्तु यूनियन के सदस्यों की संख्या में हजारों की वृद्धि होती है। माई डीयर बॉस! यह बड़ा भयानक अनुपात है। यह बड़ी भयानक परिस्थिति है कि इधर एक हाथ से तुम मज़दूर को कत्ल करते हो और उधर दूसरे हाथ से हजारों मज़दूरों को पैदा करते हो। माई डीयर बॉस! तुम अपनी मौत के स्वयं ज़िम्मेवार हो। अब मैं कुछ नहीं कर सकता।

मुझे विश्वास हो गया है कि मैं अब कुछ नहीं कर सकता। उस दिन समझौता करने के लिए मजदूरों का जो डैपूटेशन तुमने बुलाया था, जिसमें तुम सम्मिलित नहीं हुए थे, लेकिन तुम्हारी ओर से तुम्हारा बेटा और तुम्हारा मैनेजर बातें कर रहे थे, उस दिन मैं उसी कमरे में था और स्पष्ट देख रहा था कि अब के समझौता नहीं होगा! मुझे बड़ी हैरानी हुई जब मैंने सहसा अनुभव किया कि तुम्हारे आदमी किसी और भाषा में बोल रहे थे, किसी और युग की बातें कर रहे थे; और जो मज़दूर कह रहा था वह कोई और ही भाषा थी और किसी और ही युग की बातें उसके होटों पर थीं।

माई डीयर बॉस, तुम और हम और वे मजदूर दो भिन्न युगों में रह रहे हैं। दो भिन्न भाषाएँ बोल रहे हैं। वे हमारी भाषा नहीं समझते, हम उनकी भाषा नहीं समझते क्योंकि मुर्दों की भाषा और होती है और ज़िन्दों की भाषा और। तुम्हारे प्रतिनिधि और मजदूरों के प्रतिनिधि अलग-अलग बैठे हुए थे और दोनों के बीच में एक मेज़ थी, मृत्यु और जीवन के बीच

खंजर की तरह पड़ी हुई--समझौता कैसे हो सकता था ?

सहसा मैंने महसूस किया कि कहना-सुनना बेकार है। हठात् हमने अपने को बिल्कुल अकेला, उदास, श्रांत और परास्त महसूस किया। तुम तो जानते हो बॉस, मैंने जीवन में हत्याएँ की हैं, प्रेम नहीं किया है। विवाह करने का, अपना एक घर बनाने का, अपने बच्चे को हाथ में लेकर खिलाने का विचार मैंने कभी नहीं किया। किसी के लिए कोई कोमल मृदु भावना मेरे मन में जाग्रत नहीं हुई। परन्तु जाने क्यों इस समय इन मजदूरों को तुम्हारे आदमियों के सामने तनकर, गर्व से और आत्म विश्वास से बातें करते देखकर मेरा भी जी चाहा कि मेरा जीवन भी कुछ और तरह का, उन जैसा होता। कहीं पर मेरा घर होता; वह शब्द सुनाई देता जो मानव मानव के बीच एक मधुर सम्बन्ध की स्थापना करता है; वह सौन्दर्य मिल जाता जो हैरान होकर प्रेम से पूछता--'यह चुम्बन तुम्हारा है ?' बस एक क्षण के लिए यह विचार मेरे मन में आया। दूसरे ही क्षण मैं अपनी दुर्बलता पर स्वयं हँसा और उसे मन ही में कुचल डाला और जेब में पड़े छुरे को थपथपाया।

एकाएक बाहर कोलाहल सुनाई पड़ने लगा है। मैं बाहर झांककर देखता हूँ।

मिल के बन्द बाज़ार में मजदूरों का एक जलूस आ रहा है। मिल तुम्हारी, बाजार तुम्हारा, पर जलूस मजदूरों का है। वे चुपचाप, शांत, गंभीर बाजार में से होकर जा रहे हैं। आगे चलने वाले मजदूरों ने बुन्दू की लाश को उठा रखा है। आज ये लोग रो नहीं रहे हैं। इनकी आँखों में एक भी आँसू

नहीं है। कुछ लोगों ने मुझे मैनेजर को खिड़की से झाँकते हुए देख लिया। इतनी दूर से उनकी निगाहों ने मुझे पहचान लिया परन्तु उनकी निगाहों में कोई शोला न भड़का। सब चुपचाप, मौन चल रहे हैं। कहीं कोई नारा नहीं गूँजता। सब पग मिलाए एक-दूसरे के साथ-साथ आगे बढ़ रहे हैं। उनके पगों की चाप बताए दे रही है कि वे यहीं आएंगे। बुन्दू की लाश आगे-आगे चुपचाप आ रही है—एक झण्डे, एक नारे की तरह। किसी को बोलने की जरूरत नहीं है।

मैंने मैनेजर के कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया है। खिड़कियाँ भी बन्द कर ली हैं। मेज़ की दराज़ से पिस्तौल निकाल कर सामने रख लिया है। परन्तु मेरा मन बुरी तरह धड़क रहा है। मेरा मन अन्दर ही अन्दर बर्फ की सिल्ली की तरह जमा जा रहा है! मेरे कानों में उनकी पग-ध्वनियाँ गूंज रही हैं। पग हथौड़ों की भाँति सड़क पर बज रहे हैं—हथौड़ों की भाँति। डीयर बॉस, ये लोग रोते क्यों नहीं? चीखते-चिल्लाते क्यों नहीं? इन्क़लाब जिन्दाबाद के नारे क्यों नहीं लगाते? क्यों खामोशी से आगे-आगे, आगे ही आगे बढ़ते चले आ रहे हैं? मुझे अपनी नसों में किसी तूफ़ान की घन गरज सुनाई दे रही है।

यह तो बिल्कुल नया मजदूर है।

माई डीयर बॉस, कल तक यह दुनिया तुम्हारे लिए एक बहुत बड़ा घाव थी, जिसमें तुम हाथ डालकर अपनी मुट्ठी माँस और खून से भर लेते थे। लेकिन आज इस घाव का मुँह बन्द हो चुका है। आज तुम्हें माँस का एक रेशा, खून की एक बूँद

भी नहीं मिल सकती।

स्वामी, हम लोग बहुत देर तक जी लिए। अब हमारी मौत आ गई है। आज हमें चले जाना होगा—चुपचाप जीवन के भविष्य को मजदूरों के हाथों में सौंप कर चले जाना होगा। नहीं तो हमको इस तरह ढा दिया जाएगा जिस तरह नई इमारत के निर्माण के लिए पुराने ध्वस्त खंडहरों को गिरा दिया जाता है।

मालिक, वे आ रहे हैं!

मुझे बचाओ!

वे बहुत निकट आ गए हैं!

मुझे बचाओ मेरे मालिक!

अब वे बिल्कुल दरवाज़े पर आ पहुँचे हैं।

गंजा

गंजा

कुछ लोग जन्म के मूर्ख होते हैं और कुछ लोग जन्म के गंजे होते हैं। मेरा नाम दूसरों की सूची में आता है। (यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि मेरा नाम दोनों की सूची में होना चाहिए)। मैं गंजा हूँ, सदा से गंजा था, सदा गंजा रहूँगा। वास्तव में गंजेपन में एक स्थायित्व है। दरिद्रता आती है और चली जाती है। दोस्त मिलते हैं और बिछड़ जाते हैं। माया आती है और चली जाती है। परन्तु गंज जब आता है तो फिर कभी नहीं जाता। बुरे से बुरा आदमी अच्छा बन सकता है; मूर्ख से मूर्ख आदमी अकलमन्द बन सकता है। लेकिन गंजा आदमी कभी दोबारा वालों वाला नहीं बन सकता। मौत की तरह गंज का भी एक दिन निश्चित है। और मौत की तरह इसका भी कोई इलाज-उपचार नहीं।

बाज़ार में गंज को दूर करने की सैकड़ों दवाएँ बिकती हैं। हर रोज अखबारों में इश्तहार निकलते हैं और मेरा अनुभव है कि ये दवाएँ सचमुच बड़ी कारगर होती हैं। ये दवाएं अण्डे के ऊपर बाल उगा सकती हैं, कन्घी को ब्रुश में बदल सकती हैं, लेकिन चंदिया पर बाल नहीं उगा सकतीं। मेरे मित्रो, मेरे गंजे साथियो, यह नितान्त असम्भव है।

अब तो मैं अपने गंज का आदी हो गया हूँ, जैसे जन्म का काना एक आँख का आदी हो जाता है। लेकिन इस दुनिया का

क्या किया जाए, कि किसी तरह जीने नहीं देती। हर क्षण, हर समय किसी न किसी तरह याद दिलाए रखती है कि तुम गंजे हो। मेरे एक मित्र हैं—रामग़ूग़ानी ग़ूगा। उम्र में मुझ से पन्द्रह साल बड़े होंगे। बाल सफेद हो गए हैं। लड़का बी० ए० में पढ़ता है। मगर मेरे गंज के कारण बड़ी पाशविक प्रसन्नता से हमेशा अपना "बड़ा भाई" कहते हैं। एक है श्रीमन् तोतिये तर्रारी। शक्ल से दमे के रोगी दिखाई पड़ते हैं, पर मुझे वह भी 'बुढ़ऊ' कहकर पुकारते हैं। अगर मैं इस पर आपत्ति उठाता हूँ तो तुरन्त बात का रुख पलट देते हैं—"भई बुरा मत मानो। हम तो आपको बड़ा इसलिए कहते हैं कि आप अक़्ल और बुद्धिमानी में हम सबसे बड़े हैं।"

न जाने इन लोगों ने अक़्ल का गंज के साथ क्यों गठ-जोड़ कर दिया है, (किस बात से गठजोड़ किया है, दिखाई ही नहीं पड़ता)। जन साधारण की धारणा है कि जैसे-जैसे सिर के बाल घटते हैं, अक़्ल बढ़ती जाती है। फिर एक समय आता है कि इधर सिर के बाल लोप हो जाते हैं और उधर ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। पता नहीं इस कथन में कितना सत्य है। शायद इसी कारण भिक्षु, पंडित और मौलवी लोग सदा सिर घुटाए रखते हैं कि वास्तविक तौर पर न सही, कृत्रिम तौर पर ही गंजे नज़र आएँ। संसार में एक यही सम्प्रदाय मैंने देखा है जिसके लिए गंज को गर्व और महानता का लक्षण माना गया है।

मैं चूंकि स्वयं गंजा हूँ, इसलिए उस सम्बन्ध को किसी न किसी तरह ठीक समझता हूँ, जो अक़्ल और गंज के बीच स्थापित

किया गया है। पर साहब, गंजा आदमी मूर्ख न हो, अभागा अवश्य होता है। इस सम्बन्ध में एक रहस्य की बात आपको बताता हूँ। मेरे अविवाहित रहने का मूल कारण मेरा गंजा होना है।

जाने औरतों को हम गंजे आदमियों से इतनी घृणा क्यों होती है ? आपके पास गाड़ी है, फ्लैट है, बैंक बैलैन्स है, अच्छी सूरत है, परन्तु अगर आप गंजे हैं तो ये औरतें आपको कभी मुँह न लगाएँगी। वे आपके ड्राइवर से शादी करने को तैयार हो जाएँगी, पर आपसे नहीं।

शुरू-शुरू में मुझे इसका अन्दाज़ा नहीं था। जवान था, संसार भर की सुविधाएं प्राप्त थीं, इसलिए निश्चिन्त था। परन्तु जब उम्र के अड़तीस वर्ष होने को आए और कहीं शादी की बात पक्की न हुई तो तनिक चिन्तित हुआ। माँ-बाप ने कई जगह बात छेड़ी, लेकिन यह छेड़छाड़ सदा कुछ समय बाद समाप्त हो जाती। माँ-बाप आपस में कानाफूसी करते और मेरी ओर ऐसे देखते जैसे आदमी तीसरे दर्जे के क्षय-रोगी की ओर देखते हैं। फिर जब माँ-बाप हार-थककर सो गए तो मैंने विवश हो खुद छेड़छाड़ शुरू की। पर परिणाम वही सिफर का सिफर। लड़की से पहली दो-तीन मुलाकातें बड़ी अच्छी रहतीं। लड़की दिलचस्पी लेने लगती। दिलचस्पी बढ़ते-बढ़ते आकर्षण तक पहुँच जाती। आँखें सन्देश देने लगतीं। मुँह पर आपसे तुम, और तुम से डार्लिंग आ जाता। लेकिन जिस दिन मेरी टोपी उतरती—और एक न एक दिन उसे उतरना ही होता था क्योंकि प्रेम और गंज छिपाए नहीं छिपते—उस

मनहूस दिन लड़की की दिलचस्पी एक दम ख़त्म हो जाती। उसके बाद वह मुझ से कभी न मिलती। हाँ, कुछ समय बाद उसकी खबर मिलती कि उस ज़ालिम ने एक ऐसे मरदुए से शादी कर ली है जो न मेरी तरह सुन्दर है, न स्वस्थ है, न अमीर है, न सरकारी अफसर है, बल्कि किसी तीसरे दर्जे के अखबार में चौथे दर्जे का एडीटर है। हाँ, उसका सिर बालों से अवश्य भरा हुआ है।

मैंने कई औरतों को देखा है कि सिर के बालों का जिक्र करते हुए वे न केवल उत्तेजित, बल्कि उन्मत्त हो जाती हैं—'हाय री! कल नुमायश में एक आदमी देखा था। कितने सुन्दर बाल थे उसके—काले और लम्बे और घने और घुंघराले। सच री, मैं तो उस पर मर मिटी। जी चाहता था उसकी छाती पर अपना सिर रख दूँ।'

ऐसी औरतों की बातें सुनकर सदा यह विचार मन में आता है कि इनकी शादी किसी आदमी के बजाए अगर गुरीला बनमानस के साथ कर दी जाए तो ये बहुत प्रसन्न रहेंगी।

बालों के प्रति इस आकर्षण का एक फल यह निकला है कि बालों वाले लोग बड़े इतराने लगे हैं। मेरे एक दोस्त बम्बई में रहते हैं। क़द चहे के सा, शक्ल चूहे की सी, चाल भी वैसी ही है। सड़क पर इस तरह घबराए हुए चलते हैं कि जैसे कोई खटका हुआ तो अभी भागकर किसी बिल में घुस जाएँगे। मगर लड़कियाँ हैं कि उन्हें सदा घेरे रहती हैं, क्योंकि उनके सिर पर बाल हैं और बहुत ही घने हैं।

ये बाल इतने घने हैं कि गर्मी के दिनों में सूरज की किरणें उनकी खोपड़ी तक नहीं पहुँच पातीं और बरसात के दिनों में मानसून की तेज हवाएँ बस उनके बालों की ऊपरी सतह को गीला करती हैं, नीचे का भाग सूखा का सूखा रह जाता है।

इसी कारण इन साहब ने कभी गर्मियों में छतरी नहीं लगाई और बरसात में कभी रेन कोट नहीं ख़रीदा। कहते हैं, मुझे इन चीज़ों की जरूरत ही नहीं। ये कन्घे के बजाए फर्श साफ करने का ब्रुश इस्तेमाल करते हैं। तेल के बजाए तार-कोल लगाते हैं, क्योंकि इससे कम गाढ़ा तेल बालों पर कोई असर नहीं करता।

एक बार ये साहब नाई से बाल कटवा रहे थे। नाई के भाग फूटे थे कि कैंची इनके बालों में रखकर भूल गया। इसके बाद अभागे ने हज़ार बार इधर-उधर टटोला पर कैंची कहीं न मिली। मेज़ पर देखा, कुर्सी के नीचे देखा, कैंची कहीं न मिली। फिर उसे कुछ शुबा हुआ। वह इन्हें उठाकर थाने ले गया। वहाँ इन महाशय की तलाशी ली गई, मगर कैंची कहीं से न निकली। घर आकर इन साहब ने बड़े इतमीनान से कैंची अपने बालों से निकाल कर मेज़ पर रख दी। कैंची आज तक उनके मैंटल-पीस की शोभा बनी हुई है। ब्राज़ील के जंगलों की तरह इनके बालों के बारे में भी मालूम न हो सका कि इनमें किस प्रकार के भूखंड पाए जाते हैं। बहुत से नाइयों ने पता करने की कोशिश की, परन्तु आज तक कोई नाई उनकी खोपड़ी तक न पहुँच सका। इनके लिए फिर एक नए तेनसिंह

की आवश्यकता है। ये साहब तीन शादियाँ कर चुके हैं। चौथी की फिक्र में हैं, या यूं कहिए कि चौथी इनकी फिक्र में है।

और हम अभी तक कुँवारे हैं।

एक और साहब हैं। ये भी बम्बई में रहते हैं। बहुत बड़े कवि हैं। इनके बाल घुंघराले तो नहीं, हाँ बहुत काले, बहुत चमकीले हैं। ये सदा अपने बाल बढ़ाए रखते हैं। अगर बीवी के अनुरोध पर कभी नाई के यहाँ जाते हैं, तो चेहरे पर ऐसी पीड़ा का भाव होता है जैसे बाल नहीं कटवा रहे, गले के गूदों का आपरेशन करा रहे हैं। कवि-सम्मेलनों में कविता पढ़ेंगे और अपने बालों में उंगलियां फेरेंगे। फिर कविता पढ़ेंगे और फिर बालों में उंगलियां फेरेंगे। देखने वालों को लगता है कि कविता की पंक्तियां उनके मस्तिष्क में नहीं, उनके बालों में अटकी हुई हैं। औरतों में भी बहुत सर्व-प्रिय हैं, यद्यपि मुझे आज तक यह पता न लग सका कि उनकी सफलता का कारण क्या है—उनके बाल या उनकी कविता। गंजे हो जाएँ तो कुछ पता लगे।

मर्द तो इस रोग के रोगी थे ही, अब औरतों को भी यह रोग सताने लगा है, हालांकि यह युग ज़्यादा बालों का नहीं, कम बालों का है। आजकल पश्चिमी देशों से बालों का जो भी फैशन निकलता है, उसमें अधिक से अधिक बाल काट कर कम से कम बाल सिर पर रहने दिए जाते हैं। मैं समझता हूँ पश्चिम की प्रगति का मूल कारण यही है। इसीलिए यूरोप के लोग संसार के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील माने

जाते हैं। मगर न जाने हमारी पूर्वी औरतों को कब समझ आएगी। आजकल जिस औरत को देखिए अपना जूड़ा मोर के पंख की तरह फैलाए फिरती है। जिस औरत को देखिए कमर तक बाल फैलाए हुए है, यद्यपि मुझे इसमें शुबा है कि ये उनके असली बाल हैं। मेरा अनुभव है कि आजकल औरतों के जो बाल आप कमर तक बल्कि ऐड़ी तक लटके देखते हैं, उनमें प्रगति का इतना हाथ नहीं जितना घोड़े के बालों का या ईरानी बकरियों की ऊन का। मेरा अनुमान है कि आजकल की आधुनिक औरत जितने नकली बालों का प्रयोग करती है, उन्हें अगर उसके जूड़े और चोटी से अलग कर दिया जाए तो जाड़ों के लिए एक अच्छा खासा स्वैटर तैयार हो सकता है और हमारी पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए एक साधन और प्राप्त हो सकता है।

मेरा सम्बन्ध चूंकि उपयोगी साहित्य से है, इसलिए मैं किसी ऐसी वस्तु को मान्यता नहीं देता जिसका कोई उपयोग न हो। औरतों को तो साज-शृंगार की हर समय आवश्यकता महसूस होती है, इसलिए उनके व्यवहार को समझा जा सकता है। लेकिन ये मर्द काहे को इतने लम्बे-लम्बे बाल बढ़ा लेते हैं? मेरी तो समझ में नहीं आता। इसके विपरीत आप गंजे होने के लाभ मुझसे पूछिये। मुझसे क्या पूछिये, साहब, किसी भी गंजे से पूछिए। आपको मालूम होगा कि हम सब एक ही यूनिवर्सिटी से पढ़कर निकले हैं।

गंजे सिर में सबसे बड़ी बात यह है कि हर गंजा आदमी चलता-फिरता बैरोमीटर होता है। मौसम के सरकारी दफ्तर

वाले मौसम के बारे में गलत अनुमान कर सकते हैं, मगर गंजा आदमी ऐसी गलती कभी नहीं कर सकता क्योंकि उसकी गंजी चँदिया मौसम के सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन को महसूस कर सकती है। सर्दी हो या गर्मी, बहार हो या बरसात, सूरज की पहली किरण और बरसा की पहली बूंद गंजे के सिर पर अपना असर दिखाती है। फिर सोचिए कि अगर आप जवान हैं तो बूढ़ों में नहीं बैठ सकते। लेकिन अगर आप गंजे हैं तो संसार के सारे बुद्धिमानों के द्वार आपके लिए खुले हैं। बस इतना काफ़ी है कि आप गम्भीर बनकर और सिर इतना झुका कर बैठ जाइये कि आपका गंजा सिर हर एक को दिखाई पड़ता रहे। इसके बाद आप उनके बराबर बल्कि उनसे भी बढ़-चढ़कर बड़ हांक सकते हैं। और कुछ घण्टों बाद आपने सारी बहस सुनकर अगर कहीं यह कह दिया "मगर वह जो प्लैटो ने अपनी किताब में लिखा है, उससे आपकी बातों की पुष्टि नहीं होती"—तो सारे दार्शनिक मूर्च्छा खाकर गिर पड़ेंगे और सम्भव है कि होश आने पर आपके पाँव पकड़ लें। और इसका सारा श्रेय गंजेपन को होगा। और यह बात तो सब जानते हैं कि नाश्ते के समय गंजे सिर से अण्डा तोड़ने का काम लिया जा सकता है। बल्कि लेखक का अनुभव है कि अगर अंडा आधा उबला हुआ हो तो गंजी चंदिया एक अच्छी प्लेट का भी काम देसकती है। और मैंने तो साहित्य के बड़े-बड़े महारथियों को अपने सिर से बादाम और अख़रोट तक तोड़ते देखा है। पहलवान सिर इसीलिए घुटाते हैं कि विरोधी पहलवानों का सिर तोड़ने में आसानी हो। कोई बालों वाला आज तक बड़ा पहलवान न बन सका। न केवल

बौद्धिक बल्कि शारीरिक विकास का रहस्य गंजेपन में निहित है।

कहां तक गिनवाऊं ! सच तो यह है कि गंजेपन के लाभ व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त होते हैं। गंजे हो जाइये फिर देखिये नित नये लाभ आपको प्राप्त होते हैं। समझाने के लिए एक उदाहरण पेश करता हूँ। कहानी भी है और शिक्षाप्रद घटना भी।

एक बार का जिक्र है कि मैं और प्रसिद्ध कहानीकार और 'सरगम' के सम्पादक ख्वाजा अहमद अब्बास रेल में सफर कर रहे थे। किसी साहित्यिक कान्फ्रेंस में जाना था। रात का सफ़र था। रात भर प्रगतिशील साहित्य और कहानी की कला पर बहस होती रही। बातों-बातों में सुबह हो गई। जहाँ जाना था वह शहर निकट आ रहा था। इसलिए हमने सोचा कि शेव बनाकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल लिये जायें। चुनाचे जल्दी से मैंने शेव का सामान निकाला। इतने में क्या देखता हूँ कि शीशा नहीं है। मैंने घबराकर अब्बास से शीशा माँगा। उसने अपना बैग खोला तो वहाँ भी शीशा नदारत था। हम दोनों में से शीशा कोई भी न लाया था। (गंजे होने के बाद शीशे से घृणा हो जाती है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, जिसकी व्याख्या यहां उचित नहीं)।

अब कैसे शेव करें ? मैं भागकर बाथरूम में गया। दुर्भाग्य-वश वहाँ का शीशा टूटा हुआ था। अब क्या करें ?

सहसा बिजली की सी तेज़ी से एक विचार मेरे मस्तिष्क में आया। मैंने अब्बास से कहा—"ज़रा पास तो आइयो !"

वह बेचारा उठकर मेरे पास मेरे सामने आ बैठा। मैंने

उसके सिर को घुमा के, झुका के, उसकी चंदिया को अपने चेहरे के सामने कर लिया और उसको देख-देख बड़े आराम से शेव बना ली। इसके बाद उसने भी मेरे सिर के साथ यही सलूक किया। उसके बाद हमें मालूम हुआ कि हमारा गंजा सिर 'गंजे मानी' (विचारों का खजाना) के अतिरिक्त कुछ और भी है।

कहने का आशय यह कि इस तरह के अन्य लाभ हैं जिनका उल्लेख नहीं किया जा सकता। समय आने पर स्वयं-प्रेरणा की तरह प्राप्त हो जाते हैं।

परन्तु साहब, लाभ लाख हों पर हानि एक ही ऐसी है कि सब पर भारी है। और वह कि मुद्दई लाख चाहे, उसकी शादी नहीं हो सकती, जब तक वह गंजा है; और गंज ऐसी चीज़ है कि आकर फिर नहीं जाती।

संसार में और सब वस्तुयें ऐसी हैं जो समय के साथ घटती-बढ़ती रहती हैं। मगर गंज ऐसा है कि सदा बढ़ता ही रहता है। पहले साल चांदी की अशरफी जितना है। दूसरे साल बढ़-कर हथकड़ी के घेरे जितना हो गया। तीसरे साल पूर्णिमा का एक ऐसा चांद हो गया जो न घटता है, न गहनाता है। लाख उपाय कीजिये उतना का उतना रहता है। बल्कि—

मर्ज़ बढ़ता गया ज्यूं-ज्यूं दवा की।

किसी तरह भी देखिये गंज और शादी का गहरा सम्बन्ध है। कुछ लोगों की इसलिये शादी नहीं होती कि वे गंजे होते हैं। कुछ लोग इसलिये गंजे हो जाते हैं कि उनकी शादी हो जाती है। सम्बन्ध ज्यूं का त्यूं बना रहता है।

हाँ, तो जिक्र मेरे कुँआरेपन का था।

तो साहब, जब मेरी उम्र निकलने लगी और शादी न हुई तो मैं बहुत चिंतित हुआ और घबराकर एक सिद्ध के पास गया।

सिद्ध बहुत सयाना था। उसने बड़े ध्यान से मेरे दुःख की कहानी सुनी। फिर उसने बड़े स्नेह और सान्त्वना के भाव से सेरे सिर पर हाथ फेरा—"चिरंजीव, मुझे बड़ा खेद है कि मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। शादी के लिए मैं किसी गंजे को कोई तावीज़ नहीं देता। ये गंडे-तावीज़ गंजों के लिये बेकार हैं, क्योंकि गंजे आदमी के सम्बन्ध में औरत किसी की नहीं सुनती।"

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा—"हे नेक सूरत और संदिग्ध सीरत, कोई तो राह सुझा कि मैं शादी कर सकूँ।"

"बेटा, तो फिर तू सीधा 'टाइम्ज़ आफ़ इण्डिया' के दफ्तर जा और शादियों के कालम में एक इश्तिहार दे—'आवश्यकता है एक औरत की, जवान हो या बुढ़िया, काली हो या गोरी, धनी हो या निर्धन—धर्म, जाति, देश की कोई बन्दिश नहीं।' फिर बैठकर बाट देखियो। भगवान् बड़ा दयालु-कृपालु है—देगा, कुछ न कुछ अवश्य देगा।"

यह कहकर सिद्ध ने आँखें मूँद लीं और समाधि में खो गया। मैं उसके चरणों को छूकर उठने ही वाला था कि एक आवाज़ आई—

"पांच रुपये रखता जा।"

सिद्ध की हथेली खुली थी।

मेरे इश्तिहार के जवाब में कोई दो सौ अर्ज़ियां आईं। खुशी

के मारे मेरी बांछें और बत्तीसियां, दोनों खिल गईं। मगन हुआ फिरता था। वास्तव में भूल मेरी थी। आजकल शादियां न मां-बाप द्वारा होती हैं, न प्रेम द्वारा। आजकल तो इश्तिहार द्वारा सब कुछ घोषित होता है—लड़की-लड़के के नयन-नक्श, जात-पात, गोत्र-परिवार, नौकरी, बैंक बैलेंस—सब कुछ पंचवर्षीय योजना की भांति प्रकाशित कर दिया जाता है। शादी की सब बातें ऐसे कारबारी ढंग से तै कर दी जाती हैं, जैसे शादी न हो रैफ्रीज़रेटर का सौदा हो। जब दोनों पक्षों की तसल्ली हो जाती है तो शादी की तिथि निश्चित हो जाती है और फिर शादी सम्पन्न हो जाती है।

मैं समझता हूँ अगर इश्तिहार द्वारा शादियों का यह सिलसिला इसी तरह जारी रहा तो कुछ समय बाद बीच की रस्में जैसे सगाई, बरात, सेहरा आदि भी समाप्त हो जाएँगी और इसके बाद बड़ी आसानी हो जाएगी। इधर से आपने इश्तिहार दिया और सब कुछ तै करके पोस्टल आर्डर भेज दिया। उधर से एक पत्नी लकड़ी के बक्से में पैक होकर आपके घर पहुँच गई—छुट्टी!

मैं समझता हूँ यदि हमारे समय में ऐसा हो जाता तो कम से कम मेरे जीवन में वह दुर्घटना न होती, जिसका अब मैं उल्लेख करता हूँ।

हुआ यह कि दो सौ अर्ज़ियों में से हिन्दुओं और मुसलमानों की अर्ज़ियों को तो अलग कर दिया कि ये दोनों रूढ़ीवादी जातियाँ हैं। इनसे किसी गंजे की नहीं निभ सकती। मैंने सोचा, और अपनी समझ में ठीक सोचा, कि मुझे एक ऐसी जीवन-

संगिनी चाहिए जो तनिक स्वतंत्र विचारों वाली हो; जो स्वयं बाल कटाती हो। ऐसी स्त्री मेरे गंजेपन पर नाक-भौं तो चढ़ाएगी पर बाद में धीरे-धीरे मान जाएगी। जो औरत एक हद तक बालों का कटा होना पसंद करती है, वह एक दिन बालों का सफाचट होना भी सह सकती है।

यही सोचकर मैंने मिस दारूवाला को चुना। बाल कटे हुए, मुस्कराता चेहरा, खिलता रंग, पारसी की पुत्री, घर का इक-लौता दिया—दो लाख की सम्पत्ति उसके पिता की मृत्यु के बाद मेरे हिस्से में आएगी। लड़की भी आए और दौलत भी, अर्थात् पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कढ़ाई में (पता नहीं गंजे के सिर का कढ़ाई में क्या हाल होता होगा!)।

शादी बड़े आराम से सिविल मैरिज एक्ट के अधीन हो गई। यह भी अच्छा ही हुआ क्योंकि सुना है कि हिन्दुओं और मुसलमानों की शादियों में बड़े-बड़े विघ्न पड़ते हैं। दुल्हा की टोपी उतारी जाती है, पगड़ी खुल जाती है। जाने ऐन मौके पर क्या हो जाए! वैसे मैंने हालीवुड से एक विग मँगाकर पहन ली थी। कम से कम दो-चार दिन तो भरम नहीं खुलेगा। बड़ी सुन्दर विग थी—पीछे की ओर घूमे हुए काले बाल थोड़े-थोड़े घुंघराले। बड़ी फबन थी उनकी। पहनकर ऐसा लगता था जैसे कभी गंजा ही न था।

सुहागरात जब पति-पत्नी में प्यार और मुहब्बत की बातें शुरू हुईं तो मेरी पत्नी, अर्थात् भूतपूर्व मिस बारूदवाला मेरे गले से लगकर और मेरे बालों में उगलियाँ फेरते हुए बोली—

"डार्लिंग, तुम कितने सुन्दर हो ! तुम्हारे पीछे को घूमे हुए बाल कितने सुन्दर लगते हैं ! क्या प्यारे-प्यारे बाल हैं !"

मैं चुप रहा, कहता भी क्या ।

जब वह अच्छी तरह तारोफ कर चुकी तो बोली—"तुम से एक छिपी बात कहती हूँ ।"

"कहो"—मैं बोला ।

"मैं तनिक अमीर नहीं हूँ । मिस्टर बारूदवाला मेरे पिता नहीं, चाचा हैं । उनके दो लाख रुपयों के स्वप्न न देखो । वे न तुम्हारे हिस्से में आएँगे न मेरे । वे तो मेरे चचा के लड़कों में बंट जाएँगे ।" मिस बारूदवाला एक साँस में सब कुछ कह गई ।

मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने मुझे सातवीं मंजिल से उठा कर नीचे पटक दिया हो । अच्छा तो मेरे साथ यह छल किया गया । और यह औरत इस समय किसी मधुर वाणी से इस छल पर से पर्दा हटा रही थी—बिल्ली ।

वह फिर बोली—"मैं तुम्हें शादी से पहले बता देती । मगर मैं तो तुम्हारा फोटो देखकर रीझ गई थी—हाय, ये सुन्दर रेशमी बाल कहाँ पाती !"

मेरा जी चाहा दुष्ट का गला घोंट दूँ । फिर सोचा इसे भी छल का मज़ा क्यों न चखा दूँ ।

मैंने बड़े प्यार से उसकी बलाएँ लेते हुए कहा—"डार्लिंग, एक बात मैंने भी तुमसे छिपाकर रखी थी । वह तुमसे कहता हूँ ।"

"कहो ।" वह बड़े प्यार से मेरे बालों को चूमती हुई

बोली—"कहो मेरे प्राण !" मैंने अपने को उसके बाहूपाश से छुड़ाकर अपना विग उतारते हुए कहा—"डार्लिंग ! देख लो, एक धोखा मैंने भी दिया है। मैं बिल्कुल गंजा हूँ।"

अब मैं बहुत खुश था, क्योंकि मेरे गंजे सिर को देखकर वह बिल्कुल बौखला गई थी। कुछ समय तक सन्नाटे में रही। फिर सहसा ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी। क़हक़हे मार कर दोहरी होने लगी।

मैं बड़ा चकराया यह माजरा क्या है !

मैंने तनिक शर्मिंदा होकर कहा—"इसमें हँसने की क्या बात है ? बस, एक ज़रा गंजा हूँ। वरना दुनिया में हजारों आदमी हैं जो·····।"

वह मेरी बात काटकर बोली—"नहीं, यह बात नहीं है। डार्लिंग, बात यह है···हा-हा-हा···हाय, मैं हँसते-हँसते मर जाऊँगी।"

इसके बाद वाक्य अधूरा छोड़कर वह फिर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी।

अब मुझे क्रोध आ गया। मैंने दोनों कन्धों से पकड़कर उसे झंझोड़ा—"आखिर बात क्या है, जो इस तरह हँस रही हो ?"

मेरे ज़ोर-ज़ोर से पकड़कर झंझोड़ने से उसके सिर पर बन्धा रूमाल खुल गया और मैंने विस्मय से चीख मार कर देखा—

मिस बारूदवाला भी बिल्कुल गंजी थी।

साया

साया

बहुत पुराने ज़माने की बात है। अभी दुनिया नई-नई बनी थी। उस समय मनुष्य का साया भी प्रदीप्त और चमकदार होता था। वह प्रकाश-पुंज की भांति उसके साथ-साथ चलता था। उसी समय एक साया अपने आदमी से झगड़ पड़ा और बहुत क्रोध में बोला—

"देखो जी, तुम्हारी बातें मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं हैं। तुम मुझसे बिल्कुल नौकरों, बल्कि गुलामों का सा बर्ताव करते हो। स्वयं कुर्सी पर बैठते हो और मुझे अपने पैरों में बिठाते हो। स्वयं खाने की मेज़ पर बैठते हो और मुझे अपने पीछे दीवार पर खड़ा कर देते हो। जहाँ जाते हो अपने साथ-साथ मुझे लिए फिरते हो। चौबीस घन्टे की ड्यूटी लेते हो। हर समय कदमों से लगे-लगे मुझे तुम्हारे साथ आगे या पीछे, दायें या बायें चलना पड़ता है, मानो, मैं कोई तुम्हारा ख़रीदा हुआ गुलाम हूँ या अंगरक्षक हूँ। क्या समझ रखा है तुमने ? स्वयं तो खा-खाकर इतने मोटे हो रहे हो और मैंने जब से तुम्हारी दासता स्वीकार की है, आज तक एक इंच क्या एक इंच का हज़ारवाँ भाग भी मेरी खाल मोटी नहीं हुई है। कहीं से भी चुटकी भर कर देख लो। मैं बाज़ आया तुम्हारी इस नौकरी से, जिसमें कभी तो मुझे अपने आप को रबड़ की तरह खींचकर लम्बा करना पड़ता है, कभी सिकोड़कर, कान

लपेट कर चूहे की तरह तुम्हारे कदमों में घुस जाना पड़ता है। तुम क्या समझते हो ? मेरा कोई तुमसे अलग व्यक्तित्व ही नहीं है ? मैं तुम्हें दिखा दूँगा। बस, कल से मैं तुम्हारे साथ नहीं हूँगा। मैं जाता हूँ।"

आदमी को भी साये की ये कटु बातें सुनकर बड़ा ताव आया। गुस्से में गरज कर बोला—"जाओ, जाओ। किसे रोब दिखाते हो। मैं तुम्हारी बातों में आकर तुम्हारे वेतन में एक रुपया भी बढ़ाने वाला नहीं हूँ और न ड्यूटी कम करने वाला हूँ। तुम क्या समझते हो ? तुम मेरे साथ नहीं होगे तो क्या मेरा काम नहीं चलेगा ? मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम मेरा काम ही क्या करते हो ? खाना पकाते हो, झाड़ू देते हो, या जंगल से लकड़ी काट कर लाते हो या जूते पर पालिश करते हो ? बस हर समय फूहड़ स्त्री की भांति आदमी के क़दमों से लगे-लगे साथ घूमते हो। मैं तो स्वयं तुमसे तंग आ गया हूँ। तुम्हें कल जाना है ? आज ही—अभी—चले जाओ।"

"हाँ, हाँ, अभी जाता हूँ। मुझे अब स्वयं तुम्हारा साथ देना स्वीकार नहीं है"—साये ने इतना कहा और आदमी के क़दमों से उठकर घर से बाहर चला गया।

घर से बाहर मैदान में एक भैंस घास चर रही थी। भैंस के साये ने जो आदमी के साये को अकेला देखा तो पहले तो चकरा गया। फिर अपने आश्चर्य को छिपाते हुए बोला—"हैं ! तुम यहाँ अकेले कहां घूम रहे हो ?"

साये ने अट्टहास करते हुए कहा—"अरे यार, कुछ न पूछो। आज से मैं स्वतन्त्र हूँ। अपना स्वामी आप हूँ। आज से मैंने

आदमी की नौकरी छोड़ दी है।"

"क्यों ?"

"अरे भई, यह चौबीस घन्टे की सेवा कौन करे। ऊपर से उनकी हँसी-मज़ाक कौन सहन करे। फिर जब देखो हमेशा पाँव में रौंद रहे हैं। मैं तो चला आया।"

"यार, तुम ठीक कहते हो"—भैंस के साये ने सिर हिला कर कहा—"यह कम्बख्त मेरी भैंस भी मुझे सदा दलदल और कीचड़ में रौंदती रहती है। मेरे सारे शरीर पर मक्खियाँ बैठती रहती हैं। कभी कौवे भी आकर ठौंगें मार जाते हैं। लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि यह इतनी आलसी है कि कभी अपनी पूँछ से मक्खियाँ भी नहीं हटाएगी। न कभी किसी को कुछ कहेगी। इधर देखो, सारा शरीर कौवों की ठौंगों से लहू-लुहान हो रहा है।"

"हां, वास्तव में"—आदमी के साये ने भैंस के साये की ओर देखकर दया प्रदर्शित करते हुए कहा।

भैंस के साये ने भैंस की ओर बहुत घृणा से देखा और चिल्लाकर कहा—"मेरा स्तीफ़ा ले लो। मैं भी चला।"

लेकिन भैंस ने सुना भी नहीं। बड़े आनन्द से बैठी जुगाली करती रही।

"एक तो मैं इस जुगाली से तंग आ गया। जब देखो बैठी हुई जुगाली कर रही है। मेरे तो जबड़े भी दुखने लगे"—भैंस के साये ने आदमी के साये के साथ चलते हुए कहा।

"लेकिन तुम तो अभी तक जबड़े चला रहे हो।"

"ओह !"—भैंस के साये ने हँसकर कहा—"पुरानी आदत

है, लेकिन अब छूट जाएगी।"

इसके बाद उसने अपने जबड़े बंद कर लिए और आदमी के साये के साथ घास के मैदान पर दौड़ता हुआ आगे चला गया। यदि वह भैंस के साथ होता तो कभी इतना तेज़ न भाग सकता था। आज वह अपने को बहुत हल्का-फुल्का अनुभव कर रहा था। प्रसन्नता के मारे वह घास पर लोटने लगा। इतने में एक छोटा सा साया उसके पास से उछलकर दूर हट गया। भैंस के साये ने पलट कर देखा। यह एक छोटी सी गिलहरी थी। गिलहरी के साये ने आश्चर्य-चकित होकर भैंस के साये की ओर देखा, लेकिन उसे कहीं भैंस न दिखाई दी; फिर उसने भयभीत होकर आदमी के साये की ओर देखा। उसे कहीं कोई आदमी भी न दिखाई दिया। बहुत ही आश्चर्य-चकित हुआ कि यह मामला क्या है।

भैंस के साये ने हँसकर कहा—"हमने निर्णय कर लिया है कि आज से हम कोई काम न करेंगे, स्वतन्त्र रहेंगे। जहाँ हमारी इच्छा होगी, जाएंगे। जहाँ जी चाहेगा, रहेंगे। जब मन चाहेगा, काम करेंगे। जब जी चाहेगा, नहीं करेंगे।"

गिलहरी के साये ने कहा—"मैं भी इस कम्बख्त गिलहरी से तंग आ गया हूँ। एक मिनट भी कहीं आराम से बैठती हो। अभी इस तने पर है तो अब इस डाल पर। अभी यहाँ है, अभी फुदक कर वहाँ। ऐसी तेज़ी से भागती है कि मेरा तो दम फूलने लगता है, इस नौकरी में एक मिनट के लिए आराम नहीं है। और कुछ नहीं है तो बैठी-बैठी अखरोट ही कुतरा करती है या दुम ही चाटा करती है। बस, हर समय पारे की तरह चंचल

रहती है। मैं तो बाज आया इस चौबीस घन्टे की भागा-दौड़ी से।"

"तो हमारे साथ चलो।"

"चलो।"

"मिस साहब !" गिलहरी के साये ने गिलहरी से कहा—"आज से मेरी छुट्टी है। मैं तो चला।"

गिलहरी ने दुम नचाकर बड़े ठस्से से कहा—"अह है ! तो मर कम्बख्त। मैं खुद कहाँ तुझे नौकर रखती हूँ। मुँह काला कर बेशर्म, नमक हराम।"

लेकिन गिलहरी के साये ने पलट कर भी नहीं देखा, मज़े से हँसता हुआ आदमी और भैंस के साये के साथ उछलता-कूदता, झाड़ियाँ फलांगता हुआ दूर तक चला गया। थोड़ी दूर जाकर उसका दम फूल गया तो ज़मीन पर लेट कर हांपने लगा और भैंस के साये से बोला—"मुझे अपनी पीठ पर बिठा लो। जीवन भर उछलते-कूदते थक गया हूँ।"

"बैठ जाओ। तुम्हारा बोझ ही कितना है।"

भैंस के साये ने गिलहरी के साये को अपनी पीठ पर बिठा लिया। आगे चले तो उन्हें सेब का एक बहुत बड़ा पेड़ मिला। उसके साये में दो-तीन यात्री आराम कर रहे थे। दो-एक अपनी पोटलियाँ खोलकर खाना खा रहे थे। दो-एक उसके सुन्दर श्वेत फूलों की प्रशंसा कर रहे थे। यह वसन्त ऋतु थी और सेब का वृक्ष डाल-डाल, शाखा-शाखा, फूलों से लदा हुआ खड़ा था।

"कैसे प्यारे-प्यारे फूल हैं"—एक यात्री ने कहा।

"इस वृक्ष के सेब भी बहुत मीठे होते हैं'— दूसरे यात्री ने सिर हिलाते हुए और जबान से चटखारा लेते हुए कहा।

सेब के वृक्ष के साये ने आदमी, भैंस और गिलहरी के साये की राम-कहानी सुनकर कहा—"देख लिया तुमने। ये लोग साये में बैठते हैं और बड़ाई कर रहे हैं सेब के फूलों की, इसके मीठे फलों की। अरे, यदि मैं न हूँ तो कौन इस वृक्ष के नीचे बैठेगा ? मैं न हूँ तो इसकी जड़ें सूख जाएं, इसके फूल-पत्तियाँ सब गायब हो जाएँ। लेकिन इस वृक्ष की अकृतघ्नता देखो। कभी मेरी प्रशंसा नहीं करता। कभी मुझे एक फल खाने को नहीं देता। सारे फल यात्रियों में बाँट देता है।"

"तो तुम भी इसे छोड़ दो न"—गिलहरी के साये ने परामर्श दिया—"जैसे मैंने अपनी चंचल गिलहरी को छोड़ दिया।"

"तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। जब से इसके साथ लगा हूँ, जैसे बस जमीन के साथ चिपक गया हूँ। कसम ले लो जो आज तक एक कदम उठाकर कहीं चला हूँ। बैठे-बैठे तो मेरी टांगें सुन्न हो गई हैं।"

"आओ हमारे साथ दुनिया की सैर करो"—आदमी के साये ने सेब के साये से कहा।

"मियां सेब !" सेब के साये ने अपने वृक्ष से कहा—"खुदा हाफ़िज़। हम तो चलते हैं।"

सेब के वृक्ष के फूल उत्तर में कहकहा लगाकर हँस पड़े। सेब का साया रुष्ट होकर अपने साथियों के साथ आगे चला गया।

आगे उन्हें एक नदी मिली। नदी का कोई साया न था,

इसलिए प्रश्न उठा कि उसे पार कैसे किया जाए। सोच-विचार कर भैंस के साये ने आदमी और गिलहरी को तो अपनी पीठ पर बिठा लिया और सेब के वृक्ष के साये की एक झुकी हुई डाली पकड़ ली। धीरे-धीरे उन्होंने नदी को पार कर लिया।

नदी के पार जाकर गिलहरी के साये ने कहा—"आज यदि मैं गिलहरी के साये के साथ होता तो नदी के उस पार ही रह गया होता।"

"और मैं तो डूब गया होता"—आदमी के साये ने उत्तर दिया—"क्योंकि मेरे आदमी को तैरना नहीं आता।"

"और मैं तो अभी तक नदी में लोटता रहता," भैंस के साये ने निश्चिन्तता का सांस लेकर कहा—"और मेरे सारे बदन पर मिट्टी और कीचड़ जम गई होती। ओफ़! ये लोग कितने गन्दे रहते हैं।"

वृक्ष का साया बोला—"नदी में चलने से बड़ा आनन्द आया। भई, अगर मैं सेब के वृक्ष के साथ रहता तो आज तक नदी भी नहीं देख सकता था।"

चारों साथी बहुत ही प्रसन्न होकर आगे चले। चारों ओर आनन्ददायक और खुली हुई धूप थी। इस कारण प्रत्येक साया साफ़-साफ़ और सुन्दर दिखाई देता था।

× × ×

नदी के पार थोड़ी दूर तक तो हरियाली इनके साथ रही, लेकिन आगे जाकर एक रेगिस्तान शुरू हो गया। चारों ओर रेत ही रेत दिखाई देता था। गरम-गरम लू के झोंके शरीर को झुलसाने लगे। सूर्य की गरमी बढ़ती गई, यहाँ तक कि प्रत्येक

साया पसीने से लथ-पथ हो गया।

आदमी के साये ने कहा, "ओफ़! कितनी तेज धूप है। इस समय यदि मैं किसी आदमी के साथ होता तो किसी बन्द कमरे में बिजली के पंखे का आनन्द लेता होता।"

"और मैं किसी ठण्डी नदी में गोता लगाता"—भैंस के साये को याद आया।

"और मेरी गिलहरी किसी घनी झाड़ी के अन्दर दुबकी होती"—गिलहरी के साये के मुख से अनायास ही निकल पड़ा।

सेब के साये ने अपना पसीना पोंछते हुए कहा—"और सेब के कोमल-कोमल हरे पत्ते मुझे हवा देते।"

आदमी के साये ने भैंस के साये से कहा—"सारा बदन झुलसा जा रहा है।"

एकाएक गिलहरी का साया चीख कर सेब के साये से बोला—"देखो-देखो, तुम्हारा बदन काला पड़ रहा है।"

"और तुम्हारा भी"—सेब के साये ने आश्चर्य-चकित होकर गिलहरी के साये की ओर देखा और कहा।

वे एक-दूसरे की ओर चकित होकर देखने लगे। सचमुच उनके कोमल और खिले हुए बदन सूर्य की गरमी से कुम्हला कर काले होते जा रहे थे।

"न जाने यह रेगिस्तान कब खतम होगा?" गिलहरी का साया एक ठण्डी आह भर कर बोला।

"मुझसे तो अब चला भी नहीं जाता"— भैंस का साया अपने जबड़े हिलाते हुए बोला—"सख्त भूख लगी है।"

"रेत चर लो"—आदमी के साये ने ताना देते हुए कहा।

सेब के साये ने कहा—"भूख तो सबको लगी है, मगर क्या किया जाए ? इस रेगिस्तान में न कहीं वनस्पति है और न पानी। न कोई घर दिखाई देता है जहां जाकर शरण लें। अब तो भलाई इसी में है कि जिस तरह हो सके इस रेगिस्तान को जल्दी से पार कर लें। शायद दूसरी तरफ कुछ खाने को मिले।"

चारों दोस्त अब कदम मिलाकर जल्दी-जल्दी चलने लगे। पांच दिन इसी तरह भूखे-प्यासे सिसक-सिसक कर दम तोड़ते हुए चलते रहे। पांचवें दिन उन्हें यह रेगिस्तान समाप्त होता हुआ दिखाई दिया। अब उनके सामने एक बहुत ही मनोहर घाटी थी। घाटी के आगे हरियाली से ढके हुए पहाड़ थे। पहाड़ों के ऊपर ऊंचे-ऊंचे पेड़ खड़े थे। घाटी के बीच में नीले-नीले पत्थरों का बना हुआ एक सुन्दर घर था। घर के निकट चट्टानों पर से एक झरना ज़ोर से बहता हुआ उन्हें अपने निकट बुला रहा था।

कितना मनोहर दृश्य था ! ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे परियों के देश में आ गए हैं। प्रसन्नता के मारे वे चारों साये तेजी से दौड़ने लगे, मानो उनमें नया जीवन आ गया हो। रेगिस्तान को पार करते-करते उन्होंने देखा कि पहाड़ों पर बादल छा रहे हैं, सफेद-सफेद सुन्दर बादल, जो अब पहाड़ से नीचे घाटी की ओर बढ़ रहे थे; धीरे-धीरे ये बादल आसमान पर छा रहे थे, परन्तु सूर्य अभी तक चमक रहा था।

चारों दोस्तों ने खुशी-खुशी रेगिस्तान को पार कर लिया

और अब दौड़ते हुए घाटी के झरने और झरने के निकट के मकान की ओर बढ़ने लगे। एकाएक बादलों ने सारे आकाश को घेर लिया। सूर्य भी बादलों की गहरी ओट में छिप गया। फिर बादलों में गरज पैदा हुई और चारों ओर से बूंदा-बाँदी प्रारम्भ हो गई। जब सूर्य गायब हो गया तो एकाएक साये भी गायब हो गये।

"तुम कहां हो ?" आदमी के साये ने सेब के साये से पूछा—"बारिश हो रही है। मैं भीग रहा हूँ। मैं तुम्हारे पास आना चाहता हूँ।"

सेब के साये ने कहा—"मैं तो यहाँ हूँ। लेकिन तुम कहां हो ? तुम तो मुझे दिखाई भी नहीं देते।"

गिलहरी का साया घबराकर बोला—"मेरे दोस्तों ! तुम सब कहाँ चले गये। हाय ! मुझे इस बारिश में अकेला छोड़ गये।"

गिलहरी का साया रोने लगा।

सुना है कि भैंस बुद्धिमान नहीं होती, परन्तु इस समय भैंस के साये ने बहुत बुद्धिमानी से काम लिया। उसने धीमी आवाज में कहा—"रोने की जरूरत नहीं है। यदि हम एक-दूसरे को दिखाई नहीं देते तो क्या हुआ, एक-दूसरे की आवाज तो सुन सकते हैं। आवाज सुनकर एक-दूसरे के करीब आ जाओ और सेब के साये के नीचे इकट्ठे होकर बारिश में भीगने से बच जाओ।"

आदमी के साये ने कहा—"वाह ! वाह ! क्या बुद्धिमानी की बात कही है तुमने इस समय। मैं तो आज से भैंस को

बुद्धिमान समझूँगा। आज के बाद यदि कोई मुझसे पूछेगा कि अक्ल बड़ी या भैंस, तो मैं तो यही कहूंगा कि भैंस।

सेब के साये ने आवाज़ दे-दे कर सब दोस्तों को अपने पास बुला लिया और वे सब सेब के साये के नीचे इकट्ठे थे। एकाएक आदमी के साये ने कहा--"मैं तो उसी तरह भीग रहा हूँ।"

"और मैं भी"—भैंस का साया चिल्लाया।"

"और मैं भी"—गिलहरी के साये ने बड़ी निराशा से कहा।

"मैं खुद भीग रहा हूँ"—सेब का साया बोला, "इससे पहले तो ऐसा कभी न हुआ था। वास्तव में अब सोचता हूँ तो मालूम होता है कि सेब के वृक्ष के पत्ते जो थे वे बारिश को अपने हाथों पर रोक लेते थे, मेरे तो पत्ते ही नहीं। मैं तो केवल एक साया ही हूँ।"

आदमी के साये ने सर्दी से ठिठुरते हुए कहा, "वह सामने एक घर है। मैं वहां जाता हूँ और दरवाजे को खटखटाता हूं। वे लोग इस भयंकर तूफान में हम परदेशियों को अवश्य शरण देंगे।"

गिलहरी का साया बोला--"भगवान् के लिये जल्दी से जाओ। मैं तो बहुत ही छोटा सा साया हूँ। इस तूफान में बह जाऊंगा।"

जवाब में बादल ज़ोर से गरजे और ठण्डी बर्फीली हवा और तेजी से फर्राटे लेने लगी। आदमी का साया जल्दी से भागकर घाटी के ऊपर चढ़ गया और घर के दरवाजे को

खटखटाने लगा। परन्तु बहुत देर तक खटखटाने के बाद भी जब किसी ने दरवाजा न खोला तो आदमी के साये ने हैरान होकर दरवाजे से मुड़कर खिड़की में से झांका।

अन्दर कमरे में प्रकाश था। दीवार की अंगीठी में कोयले दहक रहे थे। आदमी के साये ने देखा कि एक आदमी अपनी पत्नी और चार बच्चों के साथ खाने की मेज पर बैठा खाना खा रहा है। भुना हुआ मुर्गा, लाल-लाल टमाटर, गेहूं की सौंधी-सौंधी सुनहरी-सुनहरी रोटियाँ और एक प्याले में मक्खन!

यह दृश्य देखकर आदमी का साया बिलकुल बेहाल हो गया। वह दरवाजा छोड़कर खिड़की ही को जोर-जोर से खटखटाने लगा। परन्तु घर के लोग निश्चिन्तता से खाना खाते रहे। और हँस-हँस कर एक-दूसरे से बातें करते रहे। उनके हाव-भाव से प्रतीत होता था जैसे उन्होंने दरवाजे या खिड़की के खटखटाने को सुना ही नहीं।

आदमी का साया निराश होकर लौट आया।

भैंस के साये ने पूछा—"क्या हुआ?"

आदमी के साये ने कहा—"वे लोग खाना खा रहे हैं, लेकिन मेरे दरवाजा खटखटाने को नहीं सुनते।"

"तुमने दरवाजा जोर-जोर से पीटा होता"—गिलहरी के साये ने बेसब्री से कहा।

"इतने जोर से पीटा है कि मेरी हथेलियां भी दुखने लगीं।" आदमी के साये ने उत्तर दिया—"परन्तु उनके कानों तक कोई आवाज़ नहीं जाती, क्योंकि मैं केवल एक साया हूँ। मेरे खट-खटाने से आवाज़ नहीं पैदा हो सकती।"

"अब क्या किया जाये ?" सेब का साया घबड़ाकर बोला।

कुछ क्षण तक पूर्ण निस्तब्धता रही। इसके बाद गिलहरी का साया अचानक प्रसन्नता से चिल्ला कर बोला—"मैं सामने अखरोट के पेड़ पर चढ़ता हूँ, और अखरोट तोड़ कर लाता हूँ। मजे से अखरोट खायेंगे, इतने में बारिश भी खतम हो जायेगी, फिर मजे से आगे चल देंगे।"

तीनों साये गिलहरी के साये का यह उपाय सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गिलहरी का साया खुशी-खुशी अखरोट के पेड़ की ओर लपका और उसकी शाखाओं पर चढ़कर अखरोट तोड़ने की कोशिश करने लगा। बार-बार हाथ मारने और अखरोटों को दांतों से कुतरने का असफल प्रयत्न करने के बाद वापस उतर आया। अपने दोस्तों के निकट आकर एक ठण्डी सांस भर कर बैठ गया। उसने शर्म से अपना मुँह अपनी दुम में छुपा लिया।

"क्या हुआ ?"—आदमी का साया बहुत बेसब्री से पूछने लगा।

"मुझसे अखरोट कुतरे नहीं जाते"—गिलहरी का साया बहुत ही निराशा से बोला—"क्योंकि मेरे मुँह में दांत नहीं हैं। केवल दांतों का साया है।"

× × ×

पांच दिन और पांच रात मूसलाधार वर्षा होती रही और तूफान इनके चारों ओर गरजता रहा। छठे दिन आकाश कुछ साफ हुआ और सूर्य निकला। चारों ओर हल्की-हल्की सुखद धूप फैल गई। धुँधले-धुँधले साये एक दूसरे की नजरों में

उभरने लगे। परन्तु अब इन सायों में ज्योति न थी। रेगिस्तान की धूल और तूफान की चोट खाकर उनका शरीर बिल्कुल काला पड़ गया था। चारों दोस्तों ने बहुत ही निराशा से एक-दूसरे की ओर देखा। उनकी निगाहों में एक ही प्रश्न था "अब क्या किया जाये ?"

आदमी के साये ने एकाएक निर्णय करते हुए कहा—"मेरे विचार में हमें वापस चलना चाहिये।"

× × ×

जब आदमी का साया अपने आदमी को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते शहर में पहुँचा तो उसने आदमी को हवालात की सलाखों के पीछे बन्द पाया। आदमी अपने साये को देखते ही खुशी से चीख उठा—"अच्छा हुआ तुम आ गये। अब मैं अवश्य आज़ाद हो जाऊंगा।"

"क्या हुआ ?"—आदमी के साये ने थकी हुई आवाज में उससे पूछा।"

"अरे कुछ न पूछो"—आदमी ने तनिक झुंझलाकर कहा—"तुम्हारे जाने के बाद प्रत्येक मनुष्य मुझे विचित्र दृष्टि से देखने लगा। हर एक व्यक्ति पूछता था कि तुम्हारा साया कहां है ? फिर धीरे-धीरे लोगों ने मुझसे सारे सामाजिक सम्बन्ध तोड़ दिये। न कोई मुझे अपने घर बुलाता था और न मैं किसी के घर जाने की हिम्मत कर सकता था। बच्चे मुझसे डर कर माताओं की गोद में छुप जाते थे। मैं जिधर भी जाता लोग घबड़ा कर रास्ता छोड़ देते और दूसरी ओर चले जाते, अन्त में एक दिन शहर के कोतवाल ने मुझे

पकड़कर इस हवालात में बन्द कर दिया और मुझसे कहने लगा कि तुम जादूगर हो, शैतान हो या कौन हो, बताओ तुम्हारा साया कहां है ? मैं क्या जवाब देता। मेरा साया भाग गया ? कौन मेरी बात पर विश्वास करता। अच्छा हुआ कि तुम आ गये।"

साये ने कहा—"हां मैं आ गया और अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊंगा।"

आदमी ने अपने साये से हाथ मिलाते हुए कहा—"मैंने भी उस समय गुस्से में तुमसे जाने को कह दिया। मुझे क्या मालूम था कि मुझे तुम्हारी जरूरत है। वास्तव में आदमी को साये की और साये को आदमी की आवश्यकता है और दोनों मिलकर एक-दूसरे को पूर्ण करते हैं; दोनों एक-दूसरे के लिये इतने ही जरूरी हैं, जितने पृथ्वी के लिये आकाश और दिन के लिये रात; क्योंकि जो रात है वह एक तरह से दिन का साया है।"

पवित्र

पवित्र

वह बहुत शरीफ़, बातूनी और भोला था। वह उन गिने-चुने सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से था जिन्हें अपनी पत्नी से अगाध प्रेम होता है; जो अन्य स्त्री को प्रशंसा की दृष्टि से देख तो अवश्य लेते हैं परन्तु अपने हृदय में कोई बुरा विचार नहीं रखते। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि यह असम्भव है। झख मारते हैं साले·····

उसके सौभाग्यशाली होने का एक कारण यह भी था कि उसकी पत्नी विवाह के दूसरे मास ही गर्भवती हो गई और जब हर समय रोने-बिसरने वाले नन्हे से लड़के ने इस संसार में पदार्पण किया तो उसकी तबदीली किसी दूसरे नगर में हो गई। यह नगर उसके अपने शहर से पाँच सौ मील दूर था। लाचार होकर उसे अपनी पत्नी और बच्चे को छोड़कर जाना पड़ा। इस बात का उसे बहुत दुःख था और अक्सर अपनी मित्र-मंडली में चौथे पेग के बाद वह अपनी अत्यन्त सुन्दर स्त्री और सुन्दर बच्चे का जिक्र करके रो दिया करता था।

यह शहर नया था अर्थात् उसके लिए नया था। नौकरी भी नई थी अर्थात् उसके लिए नई थी। वेतन कम था अर्थात्—हाँ—बस सबके लिए कम था। प्रत्येक समय अलग किए जाने का सन्देह बना रहता। इसलिए वह अपनी पत्नी को बुलाने के विरोध में था। कुछ महीनों के बाद—शायद—वह हर कुछ

महीनों के बाद इसी प्रकार सोचता। इस बीच में उसका प्रेम प्रगाढ़ होता गया, और उसका उन्माद बढ़ता गया।

"आह, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि मुझे अपनी बीवी से कितना प्यार है। मेरी स्त्री तो एक देवी है—ऐसी पवित्र, ऐसी भोली, ऐसी सुन्दर जैसे कमल का फूल……। इस शहर में तो उस जैसी एक स्त्री भी नहीं है।"

वह प्रतिदिन अपनी स्त्री को एक पत्र लिखता। उसकी स्त्री प्रतिदिन उसे एक पत्र लिखती। प्रतिदिन डाकखानों में उनकी अतृप्त भावनाओं की चर्चा होती।

वह वैसे बड़ा खुश-मिज़ाज है। सुन्दर और बांकी स्त्रियों की सुन्दरता और अंग-प्रत्यंग को एक चतुर जौहरी की भाँति परख सकता है। इसकी टांगें गोल हैं, केले के तने की भाँति हैं, मांसल हैं। उसकी सफ़ेदी में नये रेशम का निखार है। नाक छुरी की तरह नुकीली है। उसके गालों पर पके हुए सेब की दमक है। उसके उठान में घमण्ड है, लज्जा भी है और शोखी भी है। कमर कूल्हे से ४५ डिगरी का कोण बनाती है। रेखा-गणित के अनुसार यह संसार में सबसे सुडौल कमर है। लेकिन मेरी बीवी……।

एक वर्ष व्यतीत हो गया। युद्ध प्रारम्भ हो गया। चीज़ें महँगी होने लगीं। उसके वेतन में कुछ वृद्धि अवश्य हुई परन्तु कीमतों में वृद्धि उससे दुगनी, बल्कि कुछ-कुछ चीजों की कीमतों में तो चौगुनी हुई थी। उसके अपने शहर में वस्तुएँ इतनी महँगी न थीं और फिर घर अपना था। लेकिन इस नए शहर में तो……। यहाँ वह अपने एक मित्र के घर पर डेरा डाले हुए

था। लाभ—युद्ध—विरह·····।

उसने अपनी पत्नी को चार सौ बार लिखा कि मुझे तुमसे अत्यन्त प्रेम है।

उसकी पत्नी ने उसको चार सौ और एक बार लिखा—"प्यारे, हम दोनों चाँद और चकोर की भाँति हैं।"

उसने अपनी पत्नी का पत्र पढ़कर सोचा—यह ठीक है। चाँद और चकोर···। कभी चाँद होता है तो चकोर नहीं होता। चकोर हो तो चाँद नहीं होता। यदि दोनों हों तो कुछ और मुसीबत आ जाती है—बादल आ जाते हैं, वर्षा होने लगती है, युद्ध प्रारम्भ हो जाता है या तबादला हो जाता है।

उसने अपनी पत्नी को लिखा कि अपना नया फ़ोटो भेज दो।

फ़ोटो आया। दोस्तों ने कमल के फूल को देखा और ग्लैक्सो बिस्कुट अर्थात् बच्चे को भी। दोस्त ईर्ष्या करने लगे। जली-कटी सुनाने लगे। वह बहुत खुश हुआ।

प्रतिदिन रात को सोने से पहले वह उन दोनों तस्वीरों को सिरहाने से निकाल कर देखता। कलेजे से लगाता। फिर उन्हें चूमता और बिजली की बत्ती बुझा कर सो जाता। निद्रावस्था में देर तक अपनी पत्नी से बातें करता रहता—"आह मेरी जान, मुझे तुमसे असीम प्यार है—प्यार—सदैव रहने वाला और कभी न मरने वाला।

दो साल व्यतीत हो गए परन्तु छुट्टी न मिली। जीवन फीका होता गया और स्मृतियां धुँधली होती गईं।

सायंकाल होते ही वह अपने दोस्तों के साथ मान स्ट्रीट में

चक्कर लगाता ।

अरे देखना यार, वह पतली छरहरी सी लड़की। वल्लाह, क्या गजब का साइनाइड है……। अरे वह ग़ालिब का शेर है ना……

कुछ दिनों से एक पारसन बुद्धों के पुल से होती हुई मान स्ट्रोट में आती थी और दक्षिणी चौक तक धोरे-धीरे चलती हुई फिर पुल की ओर लौट जाती थी । वे हिरन जैसी आँखें मानो आँसुओं से धोई गई हों । वह ओसीली मुस्कान……। कमर का वह निराला लोच ।

कुछ दिन तक वह उसे देखता रहा और उसकी पवित्र भोली-भाली कल्पना में बुलबुले फूटने लगे ।

कभी तो वह धानी साड़ी में दिखाई देती, कभी गहरे नीले साये में और कभी वह गाउन में । प्रत्येक बार उसके सँवरे हुए बालों का एक विशेष अन्दाज़ होता···और वह ओसीली मुस्कान……।

वह घूरते हुए टकटकी लगाए उसके पीछे-पीछे चलता जैसे बिना पैट्रोल मोटर रस्सी से बंधी हुई किसी तेज़ रफ़्तार वाली लारी के पीछे-पीछे भागती जाती है ।

चार-पाँच दिन के बाद वह फिर कभी न दिखाई दी ।

जब दोस्तों ने पूछा तो कहने लगा—मेरी बीवी से उसकी शक्ल मिलती थी । तुमने ग़ौर से नहीं देखा ! आह, मुझे अपनी बीवी से असीम प्यार है । वास्तव में बहुत कम ऐसी स्त्रियां हैं जो मेरी रुचि पर……कम्बख्त अपना सौन्दर्य का स्तर इतना ऊँचा हो गया है कि अब साधारण सुन्दरता की स्त्री बड़ी

कठिनाई से ही जंचती है।

दोस्त उस समय मान स्ट्रीट पर से जा रहे थे। एक ने पूछा—"उस लड़की के विषय में तुम्हारा क्या विचार है।"

"हाथ अच्छे हैं, परन्तु चाल में तो जान नहीं है।"

"और वह···जामनी साये वाली।"

"मांसल है परन्तु ज़रा भारी···। तनिक आयु अधिक है। ज़रा·····आह! मेरी बीवी।"

दोस्त हँसने लगे।

एक वर्ष और व्यतीत हो गया।

अब वह अक्सर अकेला घूमा करता क्योंकि उसके सौन्दर्य का मापदंड बहुत ऊँचा हो गया था और बहुत से मित्रों के विचार उसे अच्छे न लगते थे। उनका जीवन वास्तविकता की अनुभूति से पूर्ण था। वे गलतियों को मानते थे। उनके तर्क बोदे और कमजोर थे। उन्हें अपनी पत्नियों से असीम प्यार न था क्योंकि वे रात-दिन उनके साथ जोंक की भाँति लिपटी रहती थीं। उनके लिए प्रत्येक वह स्त्री जो उनकी पत्नी न थी, सुन्दरी थी।

अब वह अकेला रह गया। मान स्ट्रीट में लूसी की टाँगें उसे भयानक रूप से अच्छी लगने लगी थीं। उसके मस्तिष्क के धुंधलके में बार-बार नाचने लगीं। उसका जी चाहा वह उन्हें केवल एक बार इस प्रकार···छूकर देख ले। लारा की ठोड़ी का कटाव उसे बहुत भला मालूम होने लगा। केट का अपने कटे हुए बालों को घुमा-घुमाकर घमण्ड से सिर ऊपर कर उसकी ओर देखना·····और जमशेद जी लांडरी वाले पारसी की युवा

स्त्री कूल्हों को कैसे चक्की के पाटों की भाँति घुमा-घुमाकर चलती थी। भई, अजीब नशा है उसमें। कैसी धुली धुलाई लौंडिया है।

फिर सिनेमा में उसने अमरीकन सिपाही के साथ जिस चंचल लड़की को देखा था उसका केवल चेहरा ही अच्छा था। लेकिन वाह, वाह! क्या चेहरा था और पूरे चेहरे से भी····· हाय हाय···वह दांत किटकिटाने लगता। उसके गालों पर गाज़े का हल्का-हल्का सा ग़ुबार·····जैसे ताज़ा सेब के कोमल रूंए·····

जी हाँ, अपनी पत्नी से प्यार था। उसे लूसी से प्यार था। उसे लारा से प्यार था। उसे केट से प्यार था। उसे लांडरो वाले की बीवी से प्यार था। उसे अमरीकन सिपाही की प्रेयसी से प्यार था। यह प्यार कितना सच्चा और कितना पवित्र था! जब कभी उसे अपने पवित्र प्रेम का ध्यान आता उसके गले में हिचकियाँ तड़पने लगतीं और आँखों में आँसू·····। आह, उसके हृदय में कितना असीम प्यार था।

एक वर्ष और व्यतीत हो गया।

क्रिसमस की रात्रि थी। मान स्ट्रीट की छोकरियाँ दूकान की भाँति सजी हुई थीं। बिजली की साफ़ रोशनी भोले-भाले चेहरों पर थिरक रही थी और नाच रही थी——"चक्का-चक्का बूम चक। चक्का-चक्का बूम चक।"

क्रिसमस की रात्रि थी और वह चार वर्ष से एक अविवाहित की भाँति मासूम था। क्योंकि उसे अपनी पत्नी से प्यार था।

मित्रों ने कहा—"आज क्रिसमस की रात्रि है। कल फिर नया वर्ष है। आओ, तुम भी जीवन की आग में कूद जाओ।"

उसने उपेक्षा से कहा—"तुम क्या जानो कि प्यार क्या होता है और फिर प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना (standard) होता है।"

वह नुक्कड़ पर अपने घर की ओर मुड़ गया।

सड़कें, गलियाँ, कूचे और बाज़ार किसी पुराने निकम्मे स्टेशन की लाइनों की भाँति उसकी आँखों के सम्मुख बिखरे पड़े थे। वह चलता गया और उसके मस्तिष्क के धुँधलके में नाचघर का शोर और सुगन्धियाँ, टांगें और सरसराती हुई साड़ियां, ठोडियों के कटाव और होटों की मुस्कान घूमती गई। वह तेज़ी से चलता गया। अन्त में उसे प्रतीत हुआ कि उसका घर आ गया है। वह रुक गया, फिर ठिठक गया। घर की अंधेरी दहलीज़ पर एक स्त्री खड़ी थी—उसकी पत्नी!

वह मुस्कराई।

कुछ समय बाद उसे तनिक होश आया तो उसने अनुभव किया कि यह उसका घर नहीं है। उसने देखा कि वह एक छोटी और मोटे होटों वाली स्त्री को अपने आलिंगन में लिए शराब पी रहा है और उससे बार-बार कह रहा है—मेरी जान मेरी प्यारी, मुझे तुमसे असीम प्यार है। पवित्र·····सच्चा··· कभी न समाप्त होने वाला।

वेश्या ने फीकी और निर्जीव आवाज में कहा—"हाँ! मैं चाँद·····तुम चकोर·····ज़रा रेडियो तो खोलो।"

मिट्टी का कलंक

यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" **मूल्यः—तीन रुपये**

संघर्ष, प्रेम, अन्तर्द्वन्द व राजपूती जीवन का यथार्थवादी चित्रण। राजस्थान में जन-जीवन के लोक गीत; लोक साहित्य का हृदयग्राही वर्णन और राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत उपन्यास।

जीना सीखो

देसराज और गन्धर्व **मूल्यः—ढाई रुपये**

इस पुस्तक में जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। जिनमें आप बातचीत, मित्रता, अतिथि सत्कार, स्मरण शक्ति, आपत्ति में, स्वास्थ्य और विचार आदि शीर्षकों का अवलोकन करके जीवन की जटिल से जटिल गुत्थियों को सुलझा कर उसे आनन्दमय बना सकेंगे।

राख की परतें

कमल शुक्ल **मूल्यः—चार रुपया**

राख की परतों में छिपी उन नन्हीं चिनगारियों को छुआ गया है, जिनमें अब भी झुलस देने की क्षमता है।

आप भी शुक्ल जी की भाँति इन नन्हीं चिनगारियों के अस्तित्व और महत्व को तभी समझ पायेंगे जब राख की परतों को टटोलियेगा। आज ही मंगाइये।

शाही लकड़हारा

शिवव्रतलाल बर्मन **मूल्यः—साढ़े तीन रुपया**

श्री शिवव्रत लाल वर्मन का यह ऐतिहासिक उपन्यास उन मानवों के लिये चुनौती है जो कि भाग्य की विडम्बना पर किंचित भी विश्वास नहीं रखते। इसकी गाथा एक राजकुमारी के जीवन की करुण कहानी है जिसका विवाह एक लकड़हारे से कर दिया जाता है। परन्तु राजकुमारी की पति परायणता, ईश्वर निष्ठा और सात्विक प्रेम लकड़हारे को ही राजा बना देता है। इसी गाथा को सरल, रोचक और अलंकृत भाषा में लिखा गया है।

एक ही पतवार

शिवव्रतलाल वर्मन **मूल्यः—तीन रुपये**

सागर की उन्मुक्त एवं उत्ताल तरंगों से प्रताड़ित एक ही पतवार आश्रित नौका का जीवन अस्थिर रहेगा या स्थिर ?

मानव जीवन की सार्थकता के लिए दो पतवारों की आवश्यकता है। वे पतवार हैं, नर और नारी; जो कि जीवन संग्राम के प्रतीक हैं और लक्ष्य सिद्धि के लिए दोनों में से एक का भी महत्व न कम है न अधिक। इसी को प्रदर्शित करने के लिए उपन्यासकार वर्मन जी की सर्वश्रेष्ठ कृति 'एक ही पतवार' आपके सम्मुख है। इनकी चमत्कृत लेखनी से आपकी हृदय तन्त्री बज उठेगी।

मेरे नाटक

रवीन्द्र नाथ टैगोर **मूल्यः—साढ़े तीन रुपये**

अब तक टैगोर के नाटक विक्षिप्तावस्था में ही भिन्न २ पुस्तकों में उपलब्ध थे। उन नाटकों को एक ही पुस्तक में लाने का प्रयास सर्व प्रथम हमारा ही है। इसमें आप पढ़ेंगे बलिदान, बैकुण्ठ का पोथा, राजा रानी, मालनी, चिन्ता, मुक्तधारा। इन सभी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद बड़े अनूठे ढंग पर किया गया है। भाषा सरल रोचक और लोकोक्ति पूर्ण है। अनु०—श्री ओमप्रकाश गुप्ता।

सीमान्त

रवीन्द्रनाथ टैगोर **मूल्यः—ढाई रुपये**

सीमान्त का रोचक एवं हृदयग्राही अनुवाद आपके सम्मुख है। इसमें संकलित उपन्यासिकाओं एवं कहानियों का एक मात्र उद्देश्य ऐहिक तृष्णाओं का निराकरण कर सत्यगत चारित्रिक गुणों का संरक्षण करना है। इनमें बाल, बात्सल्य और नारी हृदय के निरवधिक वात्सल्य भाव का अत्यन्त मनोहारी एवं यथार्थ प्रस्फुटन हुआ है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह कृति नव-निर्माण के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

अनु०—श्री शरण।

समाज का अत्याचार

शरत् चन्द्र चैटर्जी **मूल्यः—दो रुपया बारह आना**

समाज की एक ठोकर ही नारी के सुखमय जीवन में आग लगा सकती है। ऐसी ही एक विवाहिता स्त्री की यह करुण गाथा है जिसको झूठे प्रपंचों द्वारा घर से बेघर कर दिया जाता है। उसकी मानवता और नारीत्व भटकता है, पर वह पेटाग्नि को शान्त करने के लिये चन्द चांदी के टुकड़ों के लिये उनकी आहुति दे डालती है। परन्तु समाज की मुस्कान उसकी बर्बादी पर खिल २ जाती है।

चार सौ बीस

शौकत थानवी **मूल्यः—सवा तीन रुपये**

थानवी जी की हास्यास्पद चमत्कृत लेखनी से चित्रित "चार सौ बीस" समाज के इने गिने रूढ़िवादियों पर अछूता व्यंग्य है। इस व्यंग्यात्मक शैली में लेखक की पैनी दृष्टि ने उनका जिस दृष्टि से अवलोकन किया है वही इसका एक मात्र कथानक है। सारी की सारी पुस्तक हास्य की परिपाटी से पूर्ण एवं रोचक तथा शिक्षाप्रद है।

प्रेम पुजारिन

श्री सुदर्शन **मूल्यः—सवा दो रुपया**

यह उपन्यास एक नारी की करुण गाथा पर आधारित है, जिसने समाज के नग्न ताण्डव के सम्मुख अपने पवित्र स्नेह की डोर को बचाने के लिए अपने जीवन की आहुत दे दी। इस पर भी समाज की कुत्सित भावनायें उस अबला के प्रति वैसी ही रही। क्यों ?